श्रीयोगवासिष्ठ.

हिंदुस्थानीमें

वैराग्यप्रकरण औ मुमुक्षुप्रकरण

शरीफ़ सालेमहंमदकी

आवृत्ति उपरसें

मुमुक्षुके हितार्थ

तुकाराम जावजी इनोंने

छापिके प्रसिद्ध किया

ठाणा.

मुंबईमें
जावजी दादाजी इन्होंके
" निर्णयसागर " छापखानेमें छपाया.

श्रीपरमात्मने नमः

प्रस्तावना.

वेदांतविषे यह योगवासिष्ठ ग्रंथ बहुत प्रसिद्ध है मूल यह ग्रंथ संस्कृतमें है, तिसका कर्त्ता वाल्मीकऋषि है तिसपर कोइ विद्वानने टीका करी है यह ग्रंथ बहुत प्राचीन है इसकी भाषा कोई परमार्थी साधुपुरुषने करी है, तिनके नामकी ज्ञात नहीं है ऐसा सुन्या है के योगवासिष्ठकी कोई महात्मा पुरुष कहु कथा करते थे, तहां इस भाषा करनेवाले साधु श्रवनवास्ते प्रतिदिन जाते थे श्रवन करिके आश्रमपर आते थे औ जैसा सुनते थे, वैसाही व्याख्यानसहित लिखते जाते थे, ऐसे करिके योगवासिष्ठ ग्रंथकी भाषा तिन साधुपुरुषने संपूर्ण करी और ऐसाभी सुन्या है जो कोई राजा कोई साधुसें योगवासिष्ठकी कथा श्रवन करते थे औ तिस राजाके लेखक जो कथा होती थी, सो लिख लेते थे यह भी संभवे है, परंतु प्रथम वार्ताही समीचीन दिखती है, काहेतें जो अनुभवपूर्वक ग्रंथका भावार्थ लेखककरि लिखना बने नहीं इस रीतिमें यह ग्रंथ भया है, औ तिस कारनतें इसकी भाषा अति सुगम भई है औ वह साधुपुरुष अनुभवी होनेतें कहु बी सिद्धांत विरोध वाक्य इसमें नहीं पाइये है भाषा पढनेवाले मुमुक्षुजनोंपर, वह कृपालु साधु पुरुषका वडा उपकार भया है

सब मिलिके इस ग्रंथके षट् (६) प्रकरण है, सो सब छपे है, परंतु तिसकी बडी किम्मत होनेतें सर्वको उपयोगी नहीं होवे हैं तिस कारनतें औ मुमुक्षु जनोंको आरंभके दो प्रकरण अति उपयोगी धारिके, १ वैराग्यप्रकरण और २ मुमुक्षुप्रकरण मैंनें छपाये है, इसकी किम्मत थोडु होनेतें सर्वकु इसका उपयोग सहज होवेगा.

इस दो प्रकरनमेंही वेदांत सिद्धांत इतना दिखाया है, जो कोई शास्त्ररीतिसें इसका श्रवन, मनन, औ निदिध्यासन करै, तौ अवश्यमेव मोक्षकी प्राप्ति होवे वैराग्यप्रकरनमें इस जगत्की असत्यता

ऐसी स्पष्ट दिखाई है, जो श्रवणमात्रतें पुरुषकी वृत्ति वैराग्यवाली होइ आवै है, औ तिसकरि जगत्‌जालसें छूटनेकी तिस पुरुषकू इच्छा होइ आवै है

परमानदकी प्राप्ति औ अनर्थकी निवृत्ति अर्थ, मुमुक्षुकू विचारही कर्त्तव्य है औ तिसकरि ज्ञान होवै है, ऐसा इस ग्रथके मुमुक्षुप्रकरणके "विचारवर्णनमै" भली प्रकार वर्णन किया है जगतके तुच्छ पदार्थनकी प्राप्ति अर्थ, पुरुष बहुत वरशोपर्यंत पुरुषार्थ करते हैं, तब वाछित पदार्थकी प्राप्ति होती है जगतके कोई भी पदार्थ मोक्षके समान नही है मोक्षकी प्राप्तिही मनुष्य जन्मका हेतु है, फेर तिसकी प्राप्ति अर्थ पुरुषकू चाहीये सो दृढ अभ्यास करै.

आत्मज्ञानकी प्राप्ति अर्थ, विचाररूपी पुरुषार्थ अतिशयकरी अपेक्षित है. इसपर मुमुक्षुप्रकरनके २४२ पृष्ठपर "दृष्टात प्रमाण वर्णनमें" भी कह्या है जो —"हे रामजी ! आत्मज्ञान, विचारविना, वर अरु शापकरी प्राप्त नहीं होता, जब विचारकरी दृढ अभ्यास करै, तब प्राप्त होता है"

इस ग्रथके विचारमें और अद्वितीयके बोधक प्रक्रिया ग्रथोंका गुरुमुखसे श्रवन अपेक्षित है, काहेतै जो मुमुक्षुप्रकरनमें पृष्ठ २३९ पर कह्या हैं —"जो पदपदार्थको जाननेहारा होवै, अरु दृश्यकों वारवार विचारै तब तिसका दृश्यभ्रम नाश पावै इस शास्त्रके विचारविषे अवर किसी तीर्थ, तप, दान, आदिककी अपेक्षा नही, जहा स्थान होवै तहां बैठे, जैसा भोजन ग्रहविषे होवै तैसा करै, अरु वारवार इसका विचार करै, तब अज्ञान नष्ट हो जावै, अरु आत्मपदकी प्राप्ति होवै"

इस ग्रथमें बहुत पुनरुक्ति दृष्ट आवती है; परतु सो दूषण नहीं है, ग्रथका भूषण है काहेतै जो इस शास्त्रका विषय दुर्बोध है, यातै एकही दृष्टात वा सिद्धातका वारवार श्रवण अथवा विचार मुमुक्षुकू दृढता निमित्त उपयोगीही है

मेरे तरफसें इस ग्रथमें कछु अधिक न्यून नही किया है मात्र विचारकी सरलताके अर्थ प्रसगोंकों भिन्न भिन्न कर दिये है

अनुक्रमणिका.

वैराग्यप्रकरण.

मुमुक्षुप्रकरण.

श्रीपरमात्मने नमः

अथ श्रीयोगवासिष्ठ.

वैराग्यप्रकरण–प्रारंभः

प्रथमः सर्ग. १.

अथ कथारंभवर्णनं.

सत् चित् आनंदरूप जो आत्मा है तिसकों नमस्कार है. कैसा है सत् चित् आनंदरूप, सो कहते हैं जिसतें यह सर्व भासत है, अरु जिसविषे यह सर्व लीन होत हैं, अरु जिसविषे सब स्थित होत है, तिस सत्य आत्माकों नमस्कार है. ज्ञाता, ज्ञान, ज्ञेय, द्रष्टा, दर्शन, दृश्य, कर्त्ता, करण, क्रिया, जिसकरके सिद्ध होते हैं, ऐसा जो ज्ञानरूप आत्मा है तिसकों नमस्कार है. जिस आनंदके समुद्रके कणकरि संपूर्ण विश्व आनंद्वान् है, अरु जिस आनंदकरि सब जीव जीते हैं; तिस आनंदरूप आत्माकों नमस्कार है.

कोऊ एक सुतीक्ष्ण अगस्त्यका शिष्य होता भया, तिसके मनमें एक संशय उत्पन्न भया, तिसको निवृत्त करनेके अर्थ अगस्त्यमुनिके आश्रमकों गमन किया. जायकर विधिसंयुक्त प्रणामकरि स्थित भया; औ नम्रताभावसों प्रश्न करता भया.

सुतीक्ष्ण उवाच—हे भगवन्! सर्वतत्त्वज्ञ, सर्वशास्त्रोंके ज्ञाता, एक संशय मुझकों है, सो तुम कृपा करके निवृत्त करो, जो मोक्षका कारण कर्म है अथवा ज्ञान है, अथवा दोनों हैं? जो मोक्षका कारण होय सो कहो.

अगस्त्य उवाच—हे ब्रह्मण्य! केवल कर्म मोक्षका कारण नहीं, औ केवल ज्ञानतें भी मोक्ष प्राप्त नहीं होता, दोनोंकरके मोक्षकी प्राप्ति होती है. कर्म करके अंतःकरण शुद्ध होता है, मोक्ष नहीं होता अरु अंतःकरणशुद्धिविना केवल ज्ञानतें भी मुक्ति नहीं होती. अर्थ यह, जो शास्त्रहूका अर्थ तात्पर्य ज्ञानका निश्चय, अंतःकरणशुद्धि हुएविना ज्ञानकी स्थिति नहीं होती, तातें दोनोंकरि मोक्षकी सिद्धि होती है. कर्म करके प्रथम अंतःकरणशुद्धि होती है. बहुरि ज्ञान उपजता है, तब मोक्षसिद्धि होती है. जैसे दोनों पक्षकरके पक्षी आकाशमार्गकों सुखसों उडता है, तैसे कर्म अरु ज्ञान दोनोंकर मोक्षकी सिद्धता होती है. हे ब्रह्मण्य! इस अर्थके अनुसार एक पुरातन इतिहास है, सो तूं श्रवण कर,

एक कारणनाम ब्राह्मण अग्निवेषका पुत्र था, सो गुरुके निकट जायकर चार वेद षडंगसहित अध्ययन करत भया. अध्ययन करके बहुरि ग्रहमे आवत भया. औ कर्मतें रहित होयकर तूष्णीं स्थित रहा. अर्थ यह, जो संशयसंयुक्त कर्मतें रहित भया, तब पितानें देख्या

जो यह कर्मतें रहित होकर स्थित भया है• ऐसा देखिके इस प्रकार कहत भया•

अग्निवेष उवाच—हे पुत्र ! कर्मकी पालना क्यों नही कर्त्ता• ओ तूं कर्मके अकरनेतें सिद्धताकों कैसे प्राप्त होवैगा• जिसकर तूं कर्मतें रहित हुआ है सो कारण कहिदे•

कारण उवाच—हे पिता ! एक संशय मुझकों उत्पन्न हुआ है तिस करके मैं कर्मतें तूष्णीं रहा हूं, सो श्रवण करौ वेदमें एक ठौर कहा है, जो जबलग जीता रहे तबलग कर्मकों करना• जो अग्निहोत्रादिक कर्म हैं सो करताही रहै, अरु ओर ठौर कहा है, जो न धन करिके मोक्ष होता है, न कर्म करिके मोक्ष होता है, न पुत्रादिक करिके मोक्ष होता है, न केवल त्यागतें मोक्ष होता है• इन दोनोंविषे मुझकों क्या कर्त्तव्य है ! यह संशय है सो तुम कृपा करके कहौ, जो क्या कर्त्तव्य है•

अगस्त्य उवाच—हे सुतीक्ष्ण ! ऐसे जब कारणने पिताकों कहा; तब तिसका वचन सुनकर अग्निवेष कहता भया•

अग्निवेष उवाच—हे पुत्र ! एक कथा मुझतें श्रवण कर• जो पहिले हुई है, तिसकों सुनकर हृदयकेविषे धरिके आगे जो तेरी इच्छा होय सोई करना•

एक सुरुचि नाम अप्सरा थी, सो कैसी थी जो जेती कछु अप्सरा हैं, तिनविषे उत्तम थी सो एक कालमें हिमालयके शिखर उपर बैठी थी. सो हिमालयपर्वत कैसा है, जो कामना करके संतप्त जिनके हृदय हैं, ऐसे देवता अरु किन्नरके गण तहां अप्सराके साथ क्रीडा करते हैं. बहुरि कैसा है, जहां गंगाजीका प्रवाह लहरी देत चला आता है. सो गंगा कैसी है, जो महापवित्र जल है जिसका, ऐसे शिखरपर सुरुचि अप्सरा बैठी थी. तिसनें इंद्रका दूत अंतरिक्षतें चला आवता देखा. जब निकट आया तब तिसकों कहा. अहो सौभाग्य देवदूत ! तूं देवगणमें श्रेष्ठ है, तूं कहांतें आया, औ अब कहां जायगा ? सो कृपा करके कहिदे.

देवदूत उवाच—हे सुभद्रे ! तैंनें पूछ्या है सो श्रवण कर. अरिष्टनेमि एक राजर्षि था, तिसनें अपनें पुत्रकों राज देकर वैराग्य लिया, संपूर्ण विषयोंका अभिलाष त्याग करके, गंधमादनपर्वतमें जायकर तप करनें लगा. अरु धर्मात्मा था, तिसके साथ मेरा एक कार्य था, सो कार्य करके मैं अब इंद्र पास चला जाता हौं. तिसका मैं दूत हौं. संपूर्ण वृत्तांत निवेदन करनेकों चला हौं.

अप्सरोवाच—हे भगवन् ! यह वृत्तांत कौनसा है? सो मोकों कहौ मेरेको तूं अतिप्रिय है, यह जानकर पूछती हौं. औ जो महापुरुष हैं तिनकों कोई प्रश्न

करता है, तब उद्वेगतें रहित होकर उत्तर कहते हैं, तातें तूं कहिदे.

देवदूत उवाच—हे भद्रे! जो वृत्तांत है सो सुन. विस्तार करके मैं तुझकों कहता हों. उह राजा गंधमादनपर्वतमें तप करनें लगा, अरु बडा तप किया. तब देवताका राजा जो इंद्र है, तिसनें मुझकों बुलायकर आज्ञा करी जो, हे दूत! तूं गंधमादनपर्वतविषे विमान औ अप्सरा औ नानाप्रकारकी सामग्री, अरु गंधर्व, यक्ष, सिद्ध, किन्नर, ताल, मृदंग, आदि वादित्र संग लेजा. सो गंधमादनपर्वत कैसा है, जो नानाप्रकारकी लता वृक्ष करके पूर्ण है, तहां जायके राजाकों विमानपर बैठायके इहा ल्याव. हे सुंदरि! जब इंद्रनें ऐसा कहा, तब मैं विमान अरु सामग्रीसहित जहां राजा था तहां आया. अरु मैं राजाको कहा, हे राजन्! तेरे कारण विमान ले आया हों, तापर आरूढ होकर तूं स्वर्गकों चल, औ देवतानके भोग भोग जब मैंनें ऐसे कहा तब मेरा वचन सुनकर राजा बोलत भया

राजोवाच—हे देवदूत! प्रथम स्वर्गका वृत्तांत तूं मुझकों कहिदे. जो तेरे स्वर्गमें दोष कहा अरु गुण कहा है, तिनको सुनिके मैं हृदयमे विचारों, पाछे जो मेरी इच्छा होवेगी तो आऊंगा.

देवदूत उवाच—हे राजन्! स्वर्गमे बडे दिव्य

भोग हैं, सो स्वर्ग बडे पुण्यसें जीव पाता है. जो बडे पुण्यवाले होते हैं सो स्वर्गके उत्तमसुख पाते हैं. जो मध्यमपुण्यवाले हैं सो स्वर्गके मध्यमसुख पाते हैं. अरु कनिष्ठपुण्यवाले हैं सो स्वर्गके कनिष्ठसुख पाते हैं. यह जो गुण स्वर्गमें हैं सो तोकों कहे.

औ स्वर्गके जो दोष हैं सो सुन. हे राजन्! जो आपतें ऊंचे बैठे दृष्ट आते हैं, अरु उत्तमसुख भोगते हैं, तिनकों देखिके तापकी उत्पत्ति होती है; क्यों जो उनकी उत्कृष्टता सही नहीं जाती है. अरु जो कोई अपने समान सुख भोगते हैं तिनकों देखिके क्रोध उपजता है. जो मेरे समान क्यों बैठे हैं. अरु जो आपतें नीचे बैठे हैं कनिष्ठपुण्यवाले, तिनकों देखिके आपकों अभिमान उपजता है, जो मैं इनतें श्रेष्ठ हौं. औ एक और भी दोष है, जो जब इसके पुण्य क्षीण होते हैं, तब तिसी कालमें इसकों मृत्युलोकमे गिराय देते हैं एक क्षण भी रहने देते नहीं. हे राजन्! यह जो दोष कहे सो स्वर्गमें हैं. जो तैंनें पूछा सो मैंनें गुण अरु दोष कहा.

हे भद्रे! जब इस प्रकार राजाकों मैंनें कहा तब मोकों राजानें कहा. हे देवदूत! इस स्वर्गके जोग हम नाहीं, अरु हमको इच्छा भी नहीं है. हम उग्रतप करैंगे. तप करके इस देहकों भी त्याग देंगे. जैसे सर्प अपनी त्वचाको पुरातन जानिके त्याग करता है, तैसे

हम भी त्याग कर देंगे. हे देवदूत! तुम तुमारे विमानकों जहांते लाया है, तहां लेजाओ. हमारे तो नमस्कार है.

हे देवि! जब इस प्रकार राजानें मुझकों कहा, तब विमान औ अप्सराआदि सबकों लेके स्वर्गमें गया, अरु संपूर्ण वर्त्तमान इंद्रकों कह्या. तब इंद्र प्रसन्न हुआ अरु सुंदर बानी करके मुझको कहत भया. हे दूत! तूं बहुरि जहा राजा है तहां जा. वह संसारसें विरक्त हुआ है. इसकों अब आत्मपदकी इच्छा हुई है. इसकों साथ लेके वाल्मीकके पास जा. सो वाल्मीक कैसा है, जिसनें आत्मतत्त्वकों आत्माकरि जान्या है, तिसके पास ले जाय मेरा संदेश देना. जो हे महाऋषि! इस राजाकों तत्त्वबोधका उपदेश करना; जो यह बोधका अधिकारी है; काहेते, जो इसकों स्वर्गकी भी इच्छा नहीं, अरु अवरकी भी वांछा नहीं, ताते तुम इसको तत्वबोधका उपदेश करौ; जो तत्वबोधकों पायकरके संसारदुःखते मुक्त होवे.

हे सुभद्रे! जब इस प्रकार देवराजानें मुझकों कह्या, तब मैं चला, जहां राजा था वहां जाय करिके मैने कहा, जो हे राजन्! तू संसारसमुद्रते मोक्ष होनेके निमित्त वाल्मीकके पास चल, वाल्मीक तुझकों उपदेश करैगा, तब तिसकों साथ लेकर, मैं वाल्मीकके स्थानपर आय प्राप्त भया, तिस स्थानमें राजाकों बै-

ठाया अरु इंद्रका संदेश दिया. जो उहा वृत्तांत भया सो सुन. जब उहां गये अरु प्रणाम कर बैठे, तब वाल्मीकनें कह्या, हे राजन् ! कुशल है ?

राजोवाच—हे भगवन् ! परमतत्वज्ञ औ वेदांत जाननेंवालेमें श्रेष्ठ! मैं अब कृतार्थ हुआ; तुमारे दर्शन करके अब मुझकों कुशल हुआ है; अरु कछु पूछता हों; कृपा करके उत्तर केहेना, जो संसारबंधनते मुक्ति होय.

वाल्मीक उवाच—हे राजन् ! महारामायणकी कथा तुझकों कहता हौं, सो श्रवण करके तिसका तात्पर्य हृदयविषे धारणेका यत्न कर. जब तात्पर्य हृदयविषे धरैगा, तब जीवन्मुक्त होयकर विचरैगा. हे राजन् ! वसिष्ठजी अरु रामचंद्रजीका संवाद है जिसमें तिसमें सब कथाकरि मोक्षकाही उपाय कहा है, तिसकों सुनिके जैसे रामचंद्रजी अपनें स्वभावविषे स्थित हुए, अरु जीवन्मुक्त होयके विचरे है, तैसे तूं भी विचरैगा.

राजोवाच—हे भगवन् ! रामचंद्रजी कवन था, अरु कैसा था, अरु कैसा होकर विचर्या है, सो कृपा करके कहौ.

वाल्मीक उवाच—हे राजन् ! शापके वशतें हरि जो विष्णु, तिननें छल धरके मनुष्यका देह धर्या, सो अद्वैतज्ञानकरि संपन्न है, तौ भी कछुक अज्ञानकों अंगीकार करके, मनुष्यका शरीर धर्या था.

राजोवाच–हे भगवन्! चिदानंदरूप जो हरि है, तिसकों शाप किसकारण हुआ, अरु किसनें दिया? सो कहो.

वाल्मीक उवाच–हे राजन्! एक कालमें सनत्कुमार जो निष्काम हैं सो ब्रह्मपुरीमें बैठे थे, अरु त्रिलोकका पति जो विष्णुभगवान्, सो वैकुंठते उतरिके ब्रह्मपुरीमे आये; तब ब्रह्मासहित सर्व सभा उठके खडी हुई, अरु पूजन किया, परंतु सनत्कुमारनें पूजन किया नहीं, तिसकों देखकर विष्णुभगवान् बोलत भया, हे सनत्कुमार! तुझको निष्कामताका अभिमान है, तातें तूं कामकरके आतुर होवेगा, अरु स्वामीकार्तिक तेरा नाम होवेगा. जब विष्णुभगवाननें ऐसा कहा, तब सनत्कुमार बोला, हे विष्णु! सर्वज्ञताका अभिमान तुझकों है, सो तेरी सर्वज्ञता कोई कालमें निवृत्त होवेगी, अरु अज्ञानी होवेगा. हे राजन्! एक तो यह शाप हुआ, और भी सुन.

एक कालमे भृगुकी स्त्री जात रहीथी, तिसके वियोगकर वह ऋषि तपायमान हुआ था, तिसको देखके विष्णुजी हसे, तब भृगुब्राह्मणनें शाप दिया; हे विष्णु! मेरेकों देखी तैंनें हांसी करी है, सो मेरी नांई तूं भी स्त्रीके वियोगकर आतुर होवेगा.

अरु एक दिवस देवशर्माब्राह्मणने नरसिंहभगवान-

कों शाप दियाथा; सो सुनः—एक दिन नरसिंहभगवान् गंगाके तीरपर गयेथे, तहां देवशर्माब्राह्मणकी स्त्री थी; तिसकों देखके नरसिंहजी भयानकरूप देखायके हंसे, तिनकों देखके ऋषिकी लुगाइनें भय पाय प्राण छोड दीन्हे, तव देवशर्मानें शाप दिया, जो तुमने मेरि स्त्रीका वियोग किया तातें तुम भी स्त्रीका वियोग पाओगे.

हे राजन् ! सनत्कुमार, अरु भृगु, अरु देवशर्माके शाप करके विष्णुभगवाननें मनुष्यका शरीर धर्या, सो राजा दशरथके घरमें प्रगटे. हे राजन् ! ए जो शरीर धर्या है, अरु आगे जो वृत्तात हुआ है, सो सावधान होय श्रवण कर. दिव्य जो है देवलोक अरु भू जो है पृथ्विलोक, अरु पाताल लोक ऐसी त्रिलोकीकों प्रकाशता है, अरु अंतर वाहिर आत्मतत्त्वकरि पूर्ण है, ऐसा अनुभवात्मक जो मेरा आत्मा है, तिस सर्वात्माकों नमस्कार है.

हे राजन् ! यह शास्त्र जो आरंभ किया है; तिसका विषय क्या है; अरु प्रयोजन क्या है; अरु संवध क्या है; अरु अधिकारी कौन है? सो श्रवण कर. सच्चिदानंदरूप अचिंत्य चिन्मात्र आत्माकों ब्रह्म भिन्न जनावता है, सो विषय है. अरु परमानंदकी प्राप्ति अरुअनात्मअभिमानजन्यदुःखकी निवृत्ति यह प्रयोजन इसमे है. अरु ब्रह्मविद्या मोक्ष उपाय कर आत्म-

पदका प्रतिपादक है, सो संबंध है. अरु जिसकों यह निश्चय है, जो मैं अद्वैतब्रह्म अनात्मदेहसाथ बांध्या हुआ हों, सो किसी प्रकार छुटों, सो न अति ज्ञानवान् है, न मूर्ख है, ऐसा जो विकृति आत्मा है, सो यहां अधिकारी है.

यह शास्त्र मोक्षका उपाय है, सो कैसा है मोक्ष उपाय, परमानंदकी प्राप्ति करनेहारा है. जो पुरुष इसकों विचारै सो ज्ञानवान् होवे, वहुरि जन्ममरणरूप संसारमें न आवै. हे राजन् ! यह महारामायण जो है सो पावन है. श्रवणमात्रतें सव पापका नाश कर्त्ता है, जिसविषे रामकथा है; सो प्रथम मैं अपने भारद्वाज शिष्यकों श्रवण कराई है.

एक समय भारद्वाज चित्तकों एकाग्र करके मेरे पास आयाथा, तिसको मैं उपदेश कियाथा, तिसकों श्रवण करके वचनरूपी समुद्रते साररूपी रत्न निकास करके हृदयविषे धरके एक समय सुमेरुपर्वतपर गया. तहां पितामह जो ब्रह्मा सो बैठाथा, अरु भारद्वाजनें जायकर, प्रणाम किया, अरु पास बैठा, अरु ब्रह्माजीको यह कथा सुनाई; तव ब्रह्मानें प्रसन्न होयकर भारद्वाजकों कह्या, हे पुत्र ! कछु वर माग. मैं तुझपर प्रसन्न हुआ हों हे राजन् ! जव इस प्रकार ब्रह्माजीनें कह्या, तव परमउदार जिसका आशय है, ऐसा जो

भारद्वाज सो कहत भयाः—हे भूतभविष्यके ईश्वर ! जब तुम प्रसन्न हुवे हो, तब यह वर देहु, जो संपूर्ण जीव संसारदुःखतें मुक्त होहीं, अरु परमपदकों पावहीं. सो उपाय कहौ.

ब्रह्मोवाच—हे पुत्र ! तूं अपने गुरु वाल्मीकपास गमन कर, बहुरि जो तिसनें आत्मबोध महारामायण अनिंदितशास्त्रका आरंभ किया है, तिसकों सुनकर जीव महामोहजन्य संसारसमुद्रतें तरेंगे. कैसा शास्त्र है महारामायण, जो संसारसमुद्र तरनेका पूल है, अरु परमपावन है.

वाल्मीक उवाच—हे राजन्! जब इस प्रकार कहा ! तब आप परमेष्ठी ब्रह्मा सो भारद्वाजकों साथ लेकर मेरे आश्रममें आये. तब मैंनें भले प्रकारसों उनका पूजन किया. सो ब्रह्माजी कैसे हैं, सर्व भूतनके हितमें प्रीति है जिनकी, वे मुझकों कहत भये.

ब्रह्मोवाच—हे मुनीओंमें श्रेष्ठ वाल्मीक ! यह जो रामके स्वभावके कथनका आरंभ तुम किया है, तिस उद्यमका त्याग नहीं करना. इसकों आदितें अंतपर्यंत समाप्त करना. कैसा है यह मोक्ष उपाय, जो संसाररूपी समुद्रके पार करनेकों जहाज है; इसकरके सब जीव कृतार्थ होवेंगे.

वाल्मीक उवाच—हे राजन् ! इस प्रकार ब्रह्माजी

मुझकों कहिके अंतर्धान हो गये. जैसे समुद्रतें आवर्तचक्र एक मुहूर्तपर्यंत उठके बहुरि लीन हो जावै तैसे ब्रह्माजी अंतर्धान होगये. तब मैनें भारद्वाजकों कहा. हे पुत्र ! ब्रह्माजीनें क्या कहा.

भारद्वाज उवाच–हे भगवन् ! तुमकों ब्रह्माजीनें ऐसा कहा, जो हे मुनिश्रेष्ठ ! यह जो तुमनें रामके स्वभावके कथनका उद्यम किया है, तिसका त्याग नहीं करना, अंतपर्यंत प्रयास करना. काहेतें, जो इस संसारसमुद्रके पार करनेकों यह कथा जहाज है, इसकरके अनेक जीव कृतार्थ होवेंगे; अरु संसारसंकटतें मुक्त होवेंगे.

वाल्मीक उवाच–हे राजन् ! जब इस प्रकार ब्रह्माजीनें मुझकों कहा, तब ब्रह्माजीकी आज्ञाके अनुसार मैनें ग्रंथ किया, अरु भारद्वाजकों कहा. हे पुत्र! वसिष्ठजीके उपदेशकों पायकर जिस प्रकार रामजी निःशंक होइ विचरे हैं, तैसे तूं भी विचर. तब उन प्रश्न किया.

भारद्वाज उवाच–हे भगवन् ! जिस प्रकार रामचंद्रजी जीवन्मुक्त होकर विचरे हैं, सो आदिसों क्रमकरके मुझको कहो

वाल्मीक उवाच–हे भारद्वाज! रामचंद्र, लक्ष्मण, भरत, शत्रुघ्न, सीता, कौसल्या, सुमित्रा, दशरथ, अष्ट तौ यह जीवन्मुक्त हुए हैं; अरु अष्ट मंत्री, अष्ट गुण, अरु

वसिष्ठ, वामदेवतें आदि अष्टविंशति जीवन्मुक्त होय विचरे हैं. तिनके नाम सुन; रामजीतें लेकर दशरथपर्यंत आठ तौ ये कृतार्थ हुए हैं; अविरोध परमबोधवान् भये हैं; औ कुंतभासी, १ शतवर्धन, २ सुखधाम, विभीषण, ४ इंद्रजित, ५ हनुमान्, ६ वसिष्ठ, ७ वामदेव, ८ ए अष्ट मंत्री सो निःशंक होय चेष्टा करत भये हैं, अरु सदा अद्वैतनिष्ठ हुए हैं; इनकों कदाचित् स्वरूपतें द्वैतभाव नहीं स्फुर्या है; अनामय पदविषे स्थितिमें तृप्त रहे हैं; जो केवल चिन्मात्र, शुद्धपद, परमपावन, ताकों प्राप्त हुए हैं.

इति श्रीयो० वै० प्रक० कथारंभव० प्रथमः सर्गः १

द्वितीयः सर्गः २.

अथ तीर्थयात्रावर्णनं

भारद्वाज उवाच—हे भगवन्! जीवन्मुक्तकी स्थिति कैसी है? अरु रामजी कैसे जीवन्मुक्त हुए हैं? सो आदितें लेकर अंतपर्यंत सब कहौ.

वाल्मीक उवाच—हे पुत्र! यह जगत् जो भासता है, सो वास्तविक कछु नहीं उत्पन्न भया, अविचार करके भासता है; विचार कियेतें निवृत्त हो जाता है; जैसे आकाशमें नीलता भासती है, सो भ्रम करके है, जब विचार करके देखियें तब नीलताप्रतीति दूर हो जाती

है; तैसे अविचार करके जगत् भासता है, अरु विचारतें लीन हो जाता है. हे शिष्य! जबलग सृष्टिका अत्यंत अभाव नहीं होता; तबलग परमपदकी प्राप्ति नहीं होती, जब दृश्यका अत्यंत अभाव होय जावे, तब पाछे शुद्ध चिदाकाश आत्मसत्ता भासेगी. कोई इस दृश्यकों महाप्रलयमें कदाचित् अभाव कहते हैं; परतु मैं तुझकों तीनोंही कालका अभाव कहता हौं; सो सशास्त्र होनेतें इस शास्त्रमें श्रद्धासंयुक्त आदितें लेकर अंततक श्रवण करै, अरु तिनकों धारण करै, तब भ्रांति निवृत्त होय जावे; अरु अव्याकृतपदकी प्राप्ति होवे. हे शिष्य! संसार भ्रममात्र सिद्ध है, इसकों भ्रममात्र जानकर विस्मरण करना, यही मुक्ति है, अरु इसकों बंधनका कारण वासना है; वासना करके भटकत फिरता है; जब वासनाका क्षय होय जाय, तब परमपदकी प्राप्ति होवे. एक वासनाका पुतला है, तिसका नाम मन है; जैसे जल सरदीकी दृढ जडता पायके बरफ होता है, पाछे सूर्यके तापतें बहुरि पिगलकर जल होता है, तब केवल शुद्ध जल होय रहता है, तैसे आत्मरूपी जल है, तिसविषे संसारकी सत्यतारूपी जडता शीतलता है; तिस करके मनरूपी बरफका पुतला हुआ है, जब ज्ञानरूपी सूर्य उदय होवेगा, तब संसारकी सत्यतारूपी जडता, शीतलता, नवृत्त होय जावेगी.

जब संसारकी सत्यता अरु वासना निवृत्त हुई, तब मन नष्ट होय जावैगा; जब मन नष्ट हुआ, तब परम कल्याण हुआ, तातें इसकों बंधका कारण वासना हैं; अरु वासनाके क्षय हुएते मुक्ति है; सो वासना दो प्रकारकी है, एक शुद्ध अरु दूसरी अशुद्ध; यह जो अपने वास्तविक स्वरूपके अज्ञानतें अनात्मा जो देहादिक, तिनमें अहंकार करना, जब इसकों अनात्ममें आत्मा अभिमान हुआ, तब नानाप्रकारकी वासना उपजती है, तिस करके घटीयंत्रकी नांई पच्या भ्रमता है. हे साधु! यह जो पंचभूतका शरीर तूं देखता है; सो सब वासनारूप है; वासना करके खडा है; जैसे मणके धागेके आश्रयतें खडे होते हैं, जब धागा टुट पर्या, तब मणके न्यारे न्यारे होय पडते हैं, अरु ठहरते नहीं हैं; तैसे वासनाके क्षय हुए पंचभूतका शरीर नहीं रहता; तातें सब अनर्थका कारण वासना है; अरुजो शुद्ध वासना है, तिसमें जगत्का अत्यंत अभाव निश्चय होता है. हे शिष्य! अज्ञानीका जो निश्चय है, सो वासनाकर बहुरि जन्मका कारण हो जाता है; अरु ज्ञानीकी वासना सो बहुरि जन्मका कारण नहीं होती; जैसे एक कच्चा बीज होता है, दूसरा दग्ध बीज होता है, तिसमें जो कच्चा है सो बहुरि उगता है, अरु जो दग्ध हुआ है सो बहुरि नहीं उगता, तैसे अज्ञानीकी वासना रससहित है; सो जन्म-

का कारण है, अरु ज्ञानीकी वासना रसरहित है, सो जन्मका कारण नहीं; ज्ञानीकी चेष्टा स्वाभाविक गुणकरके पडी होती है; उह किसी गुणसाथ मिलकर अपनेमें चेष्टा नहीं देखता; खाता है, पीता है, लेता है, देता है, बोलता है, चलता है, व्यवहार करता है, अरु अंतर सदा अद्वैतनिश्चयको धरता है, कदाचित् द्वैतभावना तिसकों स्फुरती नहीं है, अपने स्वभावविषे स्थित है, तातें निर्गुण अरु अरूप है, ताकी चेष्टा भी जन्मका कारण नहीं है, जैसे कुंभारका चक्र है, सो जबलग उसकों फेर चढावे, तबलग वह फिरता है; औ जब फेर चढावना छोडदिया, तब क्षीयमानगतिसें उतरत उतरत फिरके स्थिर रही जाता है; तैसे जबलग अहंकारसहित वासना होती है, तबलग जन्म पावता है; जब अहंकारतें रहित हुआ तब बहुरि जन्म नहीं पावता. हे साधु! यह जो अज्ञानरूपी वासना है; तिसकों नाश करनेका उपाय एक ब्रह्मविद्या श्रेष्ठ है, जो ब्रह्मविद्या मोक्षउपायक शास्त्र है, जब इसतें और शास्त्ररूपी गर्तमें गिरैगा, तब कल्पपर्यंत अकृत्रिम पदकों न पावैगा; अरु जो ब्रह्मविद्याका आश्रय करैगा सो सुखसो आत्मपदकों प्राप्त होवैगा. हे भारद्वाज! यह मोक्ष उपाय रामजी अरु वसिष्ठजीका संवाद है, सो विचारने योग्य है; बोधका परम

कारण है; तातें आदितें लेकर अंतपर्यंत मोक्षउपाय श्रवण कर; जैसे रामजी जीवन्मुक्त विचरे हैं सो सुन. एक दिन रामजी विद्या पढिके अध्ययनशालातें अपने गृहमें आये; अरु संपूर्ण दिन विचारसहित व्यतीत करत भये; बहुरि मनमें तीर्थ ठाकुरद्धारका संकल्प धरकर पिता दशरथके पास आये; पिताके साथ जो संपूर्ण प्रजाकों सुखमें रखता था; अरु सब प्रजा तिसके निकट रहिके सुख पाई; तिस दशरथका चरण श्रीरघुनाथजीनें ग्रहण किया; जैसे सुंदर कमलकों हंस ग्रहण करै; जैसे कमलफूलके तले कोमल तरैयां होती हैं, तिन तरैयांसहित कमलकों हंस पकडता है, तैसे दशरथजीकी अंगुरीनकों रामजीनें ग्रहण किया; अरु बोले, जो हे पिता! मेरा चित्त तीर्थ अरु ठाकुरद्धारके दर्शनकों उठा है; तातें, तुम आज्ञा करौ तौ मैं तीर्थका अरु ठाकुरद्धारका दर्शन कर आऊं; मैं तुमारा पुत्र हौं; तुमारे पालना करनी योग्य है; औ आगे मैं कबी कहा नहीं, यह प्रार्थना अब करी है; तातें तुम आज्ञा देहु, जो मैं जाऊं; यह वचन मेरा फेरना नहीं; काहेतें जो ऐसा त्रिलोकीमें कोउ नहीं है; जिसका मनोरथ इस घरतें सिद्ध हुआ नहीं है, सबका मनोरथ सिद्ध हुआ है, तातें मुझकों कृपा करके आज्ञा देहु.

वाल्मीक उवाच—हे भारद्धाज! इस प्रकार जब

रामजीनें कहा, तब वसिष्ठजीपास बैठेथे, तिननें भी दशरथकों कहा• हे राजन् ! रामजीकों आज्ञा देहु; सो तीर्थ कर आवें; जो इनका चित्त उठ्या है; ये राजकुमार हैं; इसकों साथ सेना दीजें, धन दीजें; मंत्री दीजें; ब्राह्मण दीजें जो यह दर्शनकर आवे.

हे भारद्वाज ! जब ऐसे विचार किया, तब शुभ मुहूर्त्त देखकर रामजीकों आज्ञा दीनी• जब चलने लगे, तब पिता अरु माताके चरण लगे; अरु सबकों कंठ लगाई रुदन करन लगे; तिनकों मिलकर आगे चले. कैसे चले जो लक्ष्मण आदि जो भाई हैं, औ मंत्री थे, तिनकों साथ लेकर, अरु वसिष्ठ आदि जो ब्राह्मण विधिकों जाननेवाले थे, अरु बहुत धन, सेना तिनकों साथ ले चले, औ दान पुण्य करत जब गृहके बाहिर निकसे, तब उहांके जो लोक थे, अरु स्त्रियां थी तिन सबनें रामजीके उपर फूल अरु कलीकी मालकी वर्षा करी, सो कैसी वर्षा है, जैसे बरफ वर्षत है, अरु रामजीकी जो मूर्ति है सो हृदयमें धर लीनी; इसी प्रकार रामजी उहांसों चले, तहां ब्राह्मण अरु निर्धनकों दान देते देते तीर्थ जो गंगा, यमुना, सरस्वती, आदि देखे हैं, तिनमें स्नान विधिसंयुक्त करके पृथ्वीके चारों कोन उत्तर, दक्षिण, पूर्व, पश्चिमकों दान किया; अरु चारो ओर समुद्रमें स्नान कीये; अरु सुमेरु पर्वतपर गये; हिमालय पर्वतपर गये;

योग्य नहीं; अरु रामजी शोकवान् हुआ है, सो भी किसी अर्थके निमित्त होया होवैगा; पाछे इसकों सुख मिलैगा; तुम शोक मत करौ.

वाल्मीक उवाच–हे भारद्वाज! ऐसे वसिष्ठजी अरु राजा दशरथ विचार करते थे, तिस कालमें विश्वामित्र अपने यज्ञके अर्थ आवत भये, राजा दशरथके गृहमें आयकर ज्येष्टीकों कहत भये, जो राजा दशरथकों कहौ, गाधीका पुत्र विश्वामित्र बाहिर खडे हैं, तब इसनें औरहुंकों जाय कहा. हे स्वामी! एक बडा तपस्वी द्वारपैं आय खडा है, तिन हमकों कहा जो राजा दशरथके पास जाय कहौ, जो विश्वामित्र आये हैं, सो सुनकर राजा दशरथके पास गये, अरु कहा जो विश्वामित्र गाधीका पुत्र बाहिर खडा है, सो संपूर्ण मंडलेश्वरकर पूज्य जो राजा दशरथ सबनसहित अपने सिंहासनपर बैठा है; अरु बडे तेजकर संपन्न है, बडे बडे ऋषि, मुनि, साधु, प्रधान औ मित्रादिकनकरि वेष्टित है; ऐसे राजा अपनी सभामें विराजै हैं.

हे भारद्वाज! तिस राजाकूं जब इसप्रकार ज्येष्टीनें कहा तब राजा जो मंडलेश्वरकर आच्छादित व्हैके बैठा था, अरु बडा तेजवान् था, सो सुनकर सुवर्णके सिंहासनतें उठ खडा हुआ, अरु चरणों करके चल्या, राजाकी एक ओर वसिष्ठजी, औ दूसरी ओर वाम-

देवजी, अरु सुभटकी नांई मंडलेश्वर स्तुति करत चले; तब जहांतें विश्वामित्र दृष्टि आये तहांतें प्रणाम करने लगे. जहां पृथ्वीपर शीस राजाका लागे तहां पृथ्वी भी मोतीकी सुंदर होय जावे; इस प्रकार शीस नमावत नमावत राजा विश्वामित्रके आगे चल्या, सो विश्वामित्र कैसा है; जो वडी जटा शिरपरतें कांधतक परी हुई अग्निकी नांई प्रकाशित है; अरु शरीर सुवर्णकी नांई प्रकाशता है, अरु हृदयमें शांति, कोमलस्वभाव, जाननेमें आवै ऐसे अरु महातेजवान्, सुंदरकांति, अरु शांतिरूप, अरुहाथमें वांसकी तंद्री, अरु महाधैर्यवान् ऐसे विश्वामित्रकों प्रणाम करता राजा दशरथ चरणउपर जाय गिऱ्या, जैसे सूर्य सदाशिवके चरणपर जाय गिरे तैसे मस्तक नंवायकर कहा, मेरे वडे भाग्य हुए जो तुमारा दर्शन हुआ है; हमारेउपर तुमने वडा अनुग्रह किया है, हमकों वडा आनंद प्राप्त हुआ है; जो अनादि, अनंत है; आदि, मध्य, अंततें रहित अविनाशी है; ऐसा जो अकृत्रिम आनंद है, सो तुमारे दर्शनकर मुझकों प्राप्त हुआ दृष्टिमे आवता है. हे भगवन्! आज मेरे वडे भाग्य हुए हैं; जो मैं धर्मात्माके गिननेमें आऊंगा; काहेते, जो तुम मेरे कुशलनिमित्त आये हो. हे भगवन्! तुमारा आवना हमारे लक्षमें नहीं था; अरु तुमनें वडा अनुग्रह किया है; जैसे सूर्य कोई कार्य करनेकों पृथ्वीउ-

पर आवै तैसे तुम मुझकों दृष्टीमें आते हौ; अरु सबतें उत्कृष्ट दृष्टीमें आते हौ: काहेतें जो तुमारेमें दो गुण हैं; एक तौ क्षत्रियका स्वभाव तुमारेमें है अरु दूसरा ब्राह्मणका स्वभाव भी तुमारेमें भासता है; अरु शुभ गुणकर संपूर्ण हौ. हे मुनीश्वर! तुम क्षत्रियमेंतें ब्राह्मण भये हौ, ऐसा कोईका सामर्थ्य नहीं देखा, अरु तुमारा शरीर प्रकाशकर दीखता है, अरु जिस मार्ग तुम आये हौ. अरु जिस मार्ग तुम दृष्टि करत आये हौ, तहांतें अमृतवृष्टि करत आये हौ, ऐसा दृष्टि आता है. हे मुनीश्वर! तुम आए सो तुमारे दर्शनकर मुझकों बडा लाभ हुआ है.

हे भारद्वाज! इस प्रकार राजा दशरथ विश्वामित्रकों वोल्या; अरु वसिष्ठजी आयकर विश्वामित्रकों कंठ लगायके मिले, और जो मंडलेश्वर राजा थे तिनोंनें वहुत प्रणाम करे, इस प्रकार सब मिले, तव विश्वामित्रकों राजा दशरथ घरमें ले आया, जहां राजसिंहासन था, तहां आनकर वैठाया; अरु वसिष्ठ वामदेवकों वैठाये, औ राजा दशरथनें विश्वामित्रका पूजन किया; अरु अर्घ्य पादार्चन करके प्रदक्षिणा करी, वहुरि वसिष्ठजीनें विश्वामित्रका पूजन किया, अरु विश्वामित्रनें वसिष्ठजीका पूजन किया, ऐसे अन्योन्य पूजन हुआ, इस प्रकार पूजन करके सव अपने अपने आसनपर यथायोग्य वैठे

तव राजा दशरथ वोले. हे भगवन्! हमारे वडे भाग्य

हैं जो तुमारा दर्शन हुआ; जैसे कोउ तप्तकों अमृत प्राप्ति होवै; अरु जन्मांधको नेत्रप्राप्ति होवै, सो आनंद पावै; जैसे निर्धनकों चिंतामणि प्राप्त होवै, अरु आनंदको पावै; अरु जैसे किसीका बांधव मुवा होय, सो विमानपर चढ्या हुआ आकाशतें आवै, उसकों जैसा आनंद प्राप्त होवै, तैसे तुमारे दर्शनकर में आनंदकों प्राप्त हुआ हौं. हे मुनीश्वर! तुमारा आवना जिस अर्थ हुआ है, सो कृपाकर कहो; अरु जो तुमारा अर्थ है सो पूर्ण हुआ जानों; काहेतें जो ऐसा पदार्थ कोउ नहीं, जो तुमकों देना कठिन है, सब कछु मेरे विद्यमान है; जो तुमारा अर्थ है, सो निश्चयकर जाननें योग्य होय रहा है; जो कछु तुम आज्ञा करोंगे सो मैं देऊंगा.

इती श्रीयोगवासिष्ठे वैराग्यप्रकरणे विश्वामित्रागमनवर्णन नाम तृतीयः सर्गः ॥ ३ ॥

चतुर्थः सर्गः ४.

अथ विश्वामित्रेच्छावर्णनं



वाल्मीक उवाच—हे भारद्वाज! जब इस प्रकार राजा दशरथनें कहा तब मुनिमें शार्दूल जो विश्वामित्र, सो बहुत प्रसन्न भये; अरु रोम खडे हो आये, जैसे पूर्णमासीके चंद्रमाकों देखके क्षीरसागर प्रसन्न

होता है, तैसे प्रसन्न होकर कहत भया. हे राजशार्दूल! तुम धन्य हो! ऐसा क्यों न होवे, जो तुमारेमें दो गुण श्रेष्ठ हैं; एक तौ रघुवंशी हौ, दूसरा वसिष्ठजी तुमारा गुरु है; ताकी आज्ञामें चलते हौ; तातें.

हे राजन्! जो कछु मेरा प्रयोजन है, सो तुमारे विद्यमान प्रगट करता हौं, श्रवण करौ; दशरात्र यज्ञका मैंनें आरंभ किया है, सो जब यज्ञकों करने लगता हौं, तब राक्षस खर अरु दूषण सो आय विध्वंस करते हैं; जहां जहां मैं जायकर यज्ञ करता हौं, तहां तहां आयकर विध्वंस कर जाते हैं, अर्थ यह जो अपवित्र कर जाते हैं, जो रुधिर अरु मांस अरु अस्थि सो डार जाते हैं, सो स्थान यज्ञ करने योग्य नहीं रहता, औ वहुरि मैं और ठौर करनें लगता हौं, तहां भी उसी प्रकार अपवित्र कर जाते हैं, तिसके नाश करनेके निमित्त मैं तुमारे पास आया हौं, कदाचित् ऐसे कहोगे जो तुम भी समर्थ हौ, तौ हे राजन्! मैं यज्ञका आरंभ किया है, तिसका अंग क्षमा है, जो उसकों मैं शाप देऊं, तौ वह भस्म हो जावे, परंतु शाप क्रोधविना होत नहीं, अरु क्रोध कियेतें यज्ञ निष्फल हो जाता है, अरु जो मैं चुप कर रहों हौं तौ वह राक्षस अपवित्र वस्तु डार जाते है, तातें मैं तुमारी शरण आया हौं मेरा कार्य करौ. हे राजन्! तेरा जो रामजी पुत्र है, सो कमल-

नयन काकपक्षसंयुक्त है, अर्थ यह जो वालक दूसरी शिखासहित रहै है, तिसकों मेरेसाथ देहु, जो राक्षसकों मारे, तव मेरा यज्ञ सफल होय; औ तुमारे ऐसा शोक करना नहीं जो मेरा पुत्र वालक है; यह तौ वडे इंद्रके समान शूर वीर है; इसके समीप वह राक्षस ठहर न सकेंगे; जैसे सिंहके सन्मुख मृगका वच्चा नहीं ठहर शकता, तैसे तेरे पुत्रके सन्मुख राक्षस न ठहरी शकेंगे. तातें मेरेसाथ इनकों तुम देहु, जो तुमारा भी धर्म रहैगा अरु यश भी रहै, मेरा कार्य भी होवे, इसमें संदेह नहीं करना.

हे राजन् ! ऐसा पदार्थ त्रिलोकीमें कोउ नहीं जो रामजीका किया कछु न होवे, इसीतें मैं तेरे पुत्रकों ले जात हों, यह मेरे करसों ढांप्या रहैगा; अरु इसकों कोई विघ्न में होने न देऊंगा, अरु जो तेरा पुत्र वस्तु है, सो मैं जानता हों, और वसिष्ठजीहु जानते हैं, औ जो ज्ञानवान त्रिकालदर्शी होवैगा, सो भी इसको जानत होयगा, और कोईकी समर्थता नहीं है, जो इसकों जान सके; तातें तुम इसकों मेरे साथ देहु; जो मेरे कार्यकी सिद्धि होई.

हे राजन् ! जो समयकर कार्य होता है; सो थोरे कर भी वहुत सिद्धि पावता है, जैसे द्वितीयाके चंद्रमाकों देखके एक तंतुका दान किया होय, सो भी व-

हुत है; पीछे वस्त्रका दान कियेतें भी तैसा कार्य सिद्ध नहीं होता, तैसे समयकर थोडा कार्य भी बहुत सिद्धिकों देता है; अरु समयबिना बहुत कार्य भी थोरे फलकों देता है; तातें तुम मेरेसाथ अब रामजीकों दीजे. खर, दूषण ए बडे दैत्य हैं; सो आयकर मेरा यज्ञ खंडन करते हैं; जब रामजी आवैंगे तब वह भाग जायेंगे, रामजीके आगे खडे होय न शकेंगे; इसके तेजकर उह सब अल्प हो जावैंगे, जैसे सूर्यके तेजकरके तारागणका प्रकाश छिप जाता है; तैसे रामजीके दर्शनकर वह स्थित न रहेंगे; जैसे गरुडके आगे सर्प नहीं ठहर शके, तैसे रामजीके आगे राक्षस न ठहर शकेंगे; देखकर भाग जायेंगे; तातें तुम मेरेसाथ देहु, जो मेरा कार्य होवै; अरु तुमारा धर्म भी रहै. रामजीके निमित्त संदेह मत करना; वह राक्षसकी समर्थता नहीं जो रामजीके निकट आवै; अरु मैं भी रामजीकी रक्षा करौंगा.

वाल्मीक उवाच—हे भारद्वाज ! जब विश्वामित्रनें ऐसे कहा तब राजा दशरथ सुनकर तूर्णीं रहा. अरु गिरपड्या; एक मुहूर्त्तपर्यंत पड्या रहा.

इति श्रीयोगवासिष्ठे वैराग्यप्रकरणे दशरथविषादवर्णन नाम चतुर्थः सर्गः ॥ ४ ॥

पंचमः सर्गः ५.

अथ दशरथोक्तिवर्णनं.

वाल्मीक उवाच–हे भारद्वाज! एक मुहुर्त्त पाछे राजा उठे अरु महादीन जैसे हो गये; अरु महामोहकों प्राप्त होय गये; धैर्यतें रहित होकर बोले.

राजोवाच–हे मुनीश्वर! तुम क्या कहा! रामजी अब तौ कुमार हैं; शस्त्रविद्या, अस्त्रविद्या भी शीख्या नहीं है, अब तौ फूलकी शय्यापर शयन करनेवाला है; यह युद्धकों क्या जाने, अंतःपुरमें स्त्रियनके पास बेठनेवाला है; राजकुमार बालककेसाथ खेलनेवाला है, औ कदाचित् रणभूमि देखीहु नहिं है; भ्रकुटीकों चढायकें कदाचित् युद्ध भी नहीं किया; अरु कमलकी नांई जिसके हाथ हैं, अरु कोमल जिसका शरीर है; वह राक्षसकेसाथ युद्ध कैसे करेगा! कहुं पथ्थरका अरु कमलका भी युद्ध हुआ है? रामजीका वपु कमलसमान कोमल है; अरु वह महाक्रूर पथ्थरकी नांई है; उनकेसाथ युद्ध कैसे होवैगा ?

हे मुनीश्वर ! मैं नवसहस्रवर्षका हुआ हौं, अब दशमा सहस्र लग्या है; वृद्ध हुआ हौं; यह वृद्धावस्थामें मेरे घर पुत्र हुवे हैं, सो चारोंके मध्य रामजी कमलनयन, अब षोडश वर्षका हुआ है! अरु मुझकों बहुत

प्रियतम है; अरु मेरा प्राण है; रामजीविन मैं एक क्षण भी रही नहीं शकता; जो तुम इसकों ले जाओगे, तौ मेरा प्राण निसक जायगा, मैं मृतक हो जाऊंगा.

हे मुनीश्वर! केवल मेराही ऐसा स्नेह नहीं है; किंतु इसके भाई जो लक्ष्मण, भरत, शत्रुघ्न, अरु उसकी माता जो हैं; तिन सवहींके प्राण रामजी हैं; जो तुम रामजीकों ले जाओगे, तो हम सवहीं मर जायेंगे; वियोग करके जो हमकों मारने आये हौ तौ लेजाओ. हे मुनीश्वर! मेरे चित्तमें रामही पूर रह्या है; तिसकों मैं तुमारेसाथ कैसे देऊं! मै इसका देखत देखत प्रसन्न होता हौं, जैसे पूर्णमासीके चंद्रमाको देखकर क्षीरसमुद्र प्रसन्न होता है; अरु चंद्रमाको देखकर चकोर प्रसन्न होता है, अरु मेघबुंदकों देखकर पपैया प्रसन्न होता है, तैसे रामजीकों देखकर मैं प्रसन्न होता हौं, तव रामजीके वियोगकर मेरा जीवना कैसा होयगा? हे मुनीश्वर! मेरेकों रामजी जैसी प्रिय स्त्री भी नहीं, अरु धन भी ऐसा प्रिय नहीं; अरु राज्य भी ऐसा प्रिय नहीं, अवर पदार्थ भी मुझकों कोई रामके समान नहीं है, ऐसा रामजी प्यारा है.

हे मुनीश्वर! तुमारे वचन सुनिके वडा शोककों प्राप्त हुआ हौं, मेरे वडे अभाग्य आये हैं तुमारा आवना इसनिमित्त हुआ है; तुमारे वचन सुनकर जैसे कमल उपर

वरफकी वर्षा होय, ऐसी व्यथा मेरेकों होत है, अरु वरफकी वर्षातें जैसे कमल नष्ट हो जाते हैं, तैसे तुमारे वचनतें मेरी नष्टता हो जायगी; जैसें वडा मेघ चढ आवे, तामें वडा पवन चले, तव मेघकी गंभीरताका अभाव होय जाय; तैसे तुमारे वचनतें मेरी वडी प्रसन्नताका अभाव होय जाता है; जैसे वसंतऋतुकी मंजरी ज्येष्ठ आषाढमें सूक जाती है, तैसे तुमारे वचन सुनि मेरे हृदयकी प्रसन्नता जरजाती है. हे मुनीश्वर! रामजीकों देने मे समर्थ नहीं हों, जो तुम कहो तो एक अक्षौहिणी सेना मेरी है, सो वडे शूर वीरकी है, जिसकों शस्त्रविद्या, अस्त्रविद्या, मंत्रविद्या, सब आती है, और सबे युद्धमे चतुर हैं, तिनकेसाथ मै तुमारे संग चलता हौं; जायकर मै उनकों मारोंगा, अरु हस्ती, घोडा, रथ, प्यादे, ऐसी चतुरंगिणी सेनाको साथ ले जाओ, अरु जो तिहारे यज्ञके खंडनहारे हैं तिनकों नाश करौ; अरु एकसाथ मैं युद्ध नहीं कर शकोगा, जो कदाचित् यज्ञ खंडनहारा कुवेरका भाई, अरु विश्रवसका पुत्र रावण होवे, तौ उससाथ युद्ध करनेकूं में समर्थ नहीं.

हे मुनीश्वर! आगे मेरेमें वडा पराक्रम था; वैसा त्रिलोकमे कोउकों नहीं था, जो मेरे निकट मारनेकों आवे, तो मैं वाकों मार देता, अव मेरी वृद्धावस्था हुई

है; अरु देह जर्जरीभावकों प्राप्त हुआ है, इस कारण रावणसाथ युद्ध करनेकों मैं समर्थ नहीं.

हे मुनीश्वर ! मेरे बडे अभाग्य हैं, जो तुमारा आचना इसनिमित्त हुआ है, अब मेरा वैसा पराक्रम नहीं, मैं रावणसों कंपता हों, केवल मैं नहीं कंपता, इंद्रादिक देवता सब रावणतें कंपते हैं, अरु राक्षस सब उसके वश वर्त्तते हैं, अब किसकी शक्ति है जो रावणके साथ युद्ध करे ? इस कालमें वह बडा शूर वीर है.

हे मुनीश्वर ! जब मेरी समर्थता भी नहीं रही तौ राजकुमार रामजी कैसे समर्थ होवेंगे, अरु जिस रामजीकों लेनकर तुम आये हो सो रोगी होय रह्या है. उसकों चिंता ऐसी आय लगी है, जिसकर वह महा दुर्बल हो गया है, अरु अंतःपुरमें एकांतमें बैठ रहता है; खानापीना इत्यादिक जो राजकुमारकी चेष्टा है सो सब उसकों विरस हो गई है; अरु मैं नहीं जानता जो उसकों क्या दुःख प्राप्त हुआ है, जैसे कमल सूखके पीतवर्ण होय जाता है तैसा उसका मुख हो गया है, उसकों युद्ध करनेकी समर्थता नहीं अरु अपने स्थानतें बाहिरकी पृथ्वीहु नहीं देखी है, सो युद्ध कैसे करेंगे ?

हे मुनीश्वर ! वह युद्ध करनेकों समर्थ नहीं है, अरु हमारे प्राण वही है; जो उसका वियोग होवैगा तौ हमारा जीवना नहीं होवैगा, जैसे जलविना मच्छी जी-

वती नहीं है, तैसे रामजीविना कैसे जीवेंगे, अरु जो राक्षसके युद्धनिमित्त कहौ तौ हम तुमारेसाथ चलें, अरु रामजी युद्ध करनेकों योग्य नहीं.

इति श्रीयोगवासिष्ठे वैराग्यप्रकरणे दशरथोक्तिवर्णनं नाम पञ्चमः सर्गः ॥ ५ ॥

षष्ठः सर्गः ६.

अथ रामसमाजवर्णनं

वाल्मीक उवाच– हे भारद्वाज ! जब इस प्रकार राजा दशरथने कहा, तब महादीन जैसे मोहसहित अधैर्यवान वचन सुनकर, क्रोधसो विश्वामित्र कहत भया.

विश्वामित्र उवाच–हे राजन्! तूं अपने धर्मका स्मरण कर, यह प्रतिज्ञा तेनें करी है, जो तेरा अर्थ होवैगा, सो पूर्ण करोंगा, औ पूर्ण हुआ जानना, ऐसा तूंमने कहा है, अब तूं अपने धर्माकों त्यागता है, औरजो तूं सिंह हुआ मृगोंकी नांई भाजता है, तौ भाज. परंतु आगे रघुवंशमें ऐसा कोई नहीं हुआ, जैसे चंद्रमाके मंडलमे शीतलता होती है, अग्नि निकसता नहीं, तैसे तुमारे कुलविषे ऐसा कदाचित् नही हुआ; अरु जो तूं करता है तौ कर, हम उठ जायेंगे, काहेतें, जो सूने गृहतें सूनेंई जाता है, परंतु यह तुमकों योग्य न था. अरु तुम वसते

रहो, राज्य करते रहो, अरु जो कछु होवैगा सो हम समझ लैंगे अरु जो अपने धर्मकों तूं त्यागता है; तौ त्याग दे.

वाल्मीक उवाच—हे भारद्वाज ! इस प्रकार जब संपूर्ण क्रोधायमान होकर विश्वामित्र बोल्या, तब इसके क्रोधकर पचास कोटि पृथ्वी कंपने लगी, अरु इंद्रादिक देवता भी भयकों प्राप्त हुए, जो ये क्या हुआ, तब वसिष्ठ बोले.

वसिष्ठ उवाच—हे राजा ! इक्ष्वाकुके कुलमें सब परमार्थी हुए हैं; औ तूं दशरथ अपने धर्मकों क्यों त्यागता है; मेरे विद्यमान तैने कहा है, जो तुमारा अर्थ होवैगा, सो मैं पूर्ण करौंगा अब तूं क्यों भाजता है ? रामजीकों इसकेसाथ दे, अरु यही तेरे पुत्रकी रक्षा करैंगे, जैसे सर्पतें अमृतकी रक्षा गरुड करता है; तैसे तेरे पुत्रकी रक्षा यह करैगा, अरु यह कैसा पुरुष हे, सो श्रवण करौ, इसके समान बल किसीका नहीं, साक्षात् बलकी मूर्त्ति है, अरु धर्मात्मा है, साक्षात् धर्मकी मूर्त्ति है, अरु ऐसे और तापसी कोऊ नही है, अरु तपकी खानी है, अरु इसके समान कोऊ बुद्धिमान् नहीं है, अरु इसके समान कोई शूर नहीं है, अरु अस्त्र शस्त्र विद्यामें इसी जैसा कोऊ नही है, काहेतें जो दक्षप्रजापतीकी दोइ पुत्री थी, एक जया, अरु एक सुभगा; सो, ये ऋषीकों दीनी है, अरु जया थी तिसकों दैत्यके मारनेनिमित्त

पांचसों पुत्रकों प्रगट किये थे, अरु सुभगाके भी पांचसों पुत्र भये थे, सो सव दैत्यके नाशनिमित्त उत्पन्न किये थे, सो स्त्रिया इसके विद्यमान् मुर्त्ति धरिके स्थित् हुई है, तातें इसकों जीतने कोइ समर्थ नहीं है, जिसका साथी विश्वामित्र होवे, सो त्रिलोकीमें काहुसों डरे नहीं, तातें इसकों इसकेसाथ तूं अपना पुत्र दे, अरु संशय मत कर, किसीकी सामर्थ्य नहीं जो इसके होते तेरे पुत्रकों कछु कोऊ कही सकै, इसकी दृष्टिके देखनेतें दुःखका अभाव हो जाता है; जैसे सुर्यके उदयतें अंधकारका नाश हो जाता है.

हे राजन्! इसके साथ तेरे पुत्रकों खेद कहा होवैं; तूं इक्ष्वाकुके कुलका है; अरु दशरथ तेरा नाम है; सो तूं जैसे जव अपने धर्ममें स्थित न रहे तो और जीवतें धर्मकी पालना कैसे होयगी! जो कछु श्रेष्ठ पुरुष चेष्टा करते है; तिनके अनुसार और जीव करते हैं, जो तुमसरखे अपने वचनकों पालना न करैंगे तव और किसी सो कहा वनैगी? अरु तुमारे कुलमें ऐसा वचनसों फिरना कवहु नहीं हुआ, तातें अपने धर्मकों त्यागना योग्य नहीं; तूं अपनें पुत्रकों दे, अरु जो तूं उनके भयकर शोकवान होवे, तो भी ना मत कहे; औ मूर्त्तिधारी काल आयकर स्थित होवे तो भी विश्वामित्रके विद्यमान तेरे पुत्रकों कछु होवे नहीं, तूं शोक मत कर.

अपने पुत्रकों इसके साथ दे, अरु जो न देगा, तौ दो प्रकारका तेरा धन नष्ट होवैगा. एक धन यह है, जो कूप, वावरी, ताल, कराये होयेंगे तिनका जो पुण्य है, सो नष्ट हो जावैगा, अरु तप, व्रत, यज्ञ, दान, स्नानादिक जो पुण्य है, अरु क्रिया है, तिस सबका फल नष्ट हो जावैगा, जो तेरा गृह निरर्थक होय जावैगा, तातें मोह अरु शोककों त्याग; अरु अपने धर्मकों स्मरण कर. रामजी इसके साथ दे, दे, तेरे सब कार्य सफल होवेंगे.

हे राजन्! इस प्रकार जब तेरे करना था, तब प्रथमहीं विचारकर कहना था, काहेतें विचारविना काम करनेका परिणाम दुःख होता है; तातें इसीके साथ तेरे पुत्रकों देहु.

वाल्मीक उवाच—हे भारद्वाज! जब इस प्रकार वसिष्ठजीनें कहा, तब राजा दशरथ धैर्यवान होकर भृत्यमें जो श्रेष्ठ भृत्य था, वाकों बुलायकर कहत भया. हे महाबाहो! रामजीकों ले आओ. तब इसके साथ जो चाकर अंतर बाहिर आनेजानेवाला था, अरु छलतें रहित था, सो राजाकी आज्ञा लेकर रामजीके निकट गया, एक मुहूर्त्त पाछे पीछा आया, अरु कहत भया, हे देव! रामजी तौ वडी चितामें बैठे हैं; मैं रामजीको वारंवार कहा जो अब चलियें, तब वह कहत है जो चलें हैं, ऐसे कही कही चुप हो रहें हैं.

हे भारद्वाज! इस प्रकार जब राजानें श्रवण किया तब कहा, रामजीके मंत्री अरु टहलुए सब बुलाओ, तब सबकों बुलाय निकट ल्याये, तब राजा आदरसों कोमल सुंदर वचन युक्तिसों कहत भया. हे रामजीके प्यारे, रामजीकी कहा दशा है ? औ ऐसी दशा क्यों कर हुई है ? सो सब क्रमकरके कहौ.

मंत्र्युवाच—हे देव! हम कहा कहैं; जेते हम कछु दृष्टिमें आते हैं, सो सब आकार अरु प्राण देखनें मात्र हैं; परंतु सब हम मृतक हैं; काहेतें, जो हमारा स्वामी रामजी बडी चिताकों प्राप्त हुआ है. हे राजन्! जिस दिनके रघुनाथजी तीर्थकर आये हैं, तिस दिनके चिंताकों प्राप्त भये है, जब उत्तम भोजन हम ले जाते हैं, औ पान करनेका पदार्थ औ पहरनेका पदार्थ, अरु देखनेका पदार्थ, कछु ले जाते हैं, सो सुखदायी पदार्थ रससहित देखिके किसी प्रकार प्रसन्न होई तौ भला, परंतु हमने नहीं देख्या है, ऐसी चिंताके विषे वह लीन है, जो देखता भी नहीं; अरु जो देखता है, तौ क्रोध करता है, अरु सुखदायी पदार्थका निरादर करता है, अरु अंतःपुरमें इनकी माता, नानाप्रकारके हीरे अरु मणीके भूपण देती है, तौ उनकों भी डार देता है, नहीं तौ किसी निर्धनकों देता है, प्रसन्न किसी पदार्थपें होते नहीं है. सुंदर स्त्रियां विद्यमान खडी होतियां हैं, नानाप्रकारके भू-

षणसहित महामोह करनेहारियां निकट होइकरि लीला करतियां हैं, कटाक्षहुसहित प्रसन्न करनेनिमित्त; तौ भी विषवत् जानता है; उनकी और देखता भी नहीं जैसे पपैया अवर जलकों देखता भी नहीं. जब अंतःपुरविषे निकसता है, तब उनकों देखिकरि क्रोधवान होता है.

हे राजन् ! अवर कछु उसकों भला नहीं लगता. किसी बडी चिंताविषे मग्न हैं; औ तृप्त होकर भोजन नहीं करता, क्षुधावंत रहता है, न कछु पहरने, खाने पीनेकी इच्छा रखता है, न राज्यकी इच्छा है, न किसी इंद्रियहूंके सुखकी इच्छा है; महा उन्मत्तकी नांई बैठ रहता है; अरु जब कोइ सुखदायी पदार्थ फूलादिक ले जाते हैं; तब क्रोध करता है, हम नहीं जानते जो क्या चिंता उसकों भई है; एक कोटरीमें पद्मासन करके अरु हाथमें मुख धरी बैठ रहते हैं, अरु जो कोऊ बडा मंत्री आयके पूछता है तब ताकों कहता है, जो तुम जिसकों संपदा मानते हौ सोई आपदा है, जिसकों आपदा जानते हौ सो आपदा नहीं है. अरु नाना प्रकारके संसारके पदार्थ, जो रमणीयकर जानते हौ, सो सब झूठे हैं, याहीमें सब डूबे हैं, ये सब मृगतृष्णाके जलवत् हैं; तिनकों सत्य जानी मूर्ख जो हरिण सो दौरते हैं, अरु दुःख पावते हैं.

हे राजन् ! कदाचित् बोलते हैं तो ऐसे बोलते हैं;

और कछु उनके और सुखदायी नहीं भासता है, अरु जो हम हांसीकी वार्त्ता करते हैं, तौ वह हसत नहीं हैं, जिस पदार्थकों प्रीतिसंयुक्त लेते थे, तिस पदार्थकों अब डारि देते हैं, अरु दिनदिनपैं दुर्बल जैसे होत जाते हैं. अरु अंतःपुरमें स्त्रियोंके पास बैठते हैं; तब वह नानाप्रकारकी चेष्टा रामजीकों प्रसन्न करनेनिमित्त दिखावती हैं; इनकों भी देखके प्रसन्न नहीं होते, अरु जैसे मेघकी बूंदतें पर्वत चलायमान नहीं होते हैं, तैसे आप चलायमान नहीं होते हैं; अरु जो बोलते हैं तौ ऐसे कहते हैं, न राज्य सत्य है, न भोग सत्य है, न इह जगत् सत्य है, न भ्रात सत्य है, न मित्र सत्य है, मिथ्या पदार्थके निमित्त मूर्ख परे यत्न करते हैं, जिनकों सत्य जानते हैं अरु सुखदायक जानते हैं, सो बंधनका कारण है और कहा कहिये! जो कोइ इनके पास राजा अथवा पंडित जावे. तिनकों देखकर कहते हैं, यह पशु हैं, आशारूपीफांशीकर बांधे हुए हैं.

हे राजन्! जो कछु भोग्य पदार्थ हैं तिनकों देखकर उनका चित्त प्रसन्न नहीं होता, अरु देखके क्रोधवान होता है; जैसे पपैया मारवाडमे आवै, तब मेघकी बूंद् हु देखता नहीं है, तातें खेदवान होता है, तैसे रामजी विषहूतें खेदवान होते हैं. हे राजन्! इन करके हर्षवान नहीं होता, तातें हम जानते हैं, जो इनकों परमपद

पावनेकी इच्छा है, परंतु कदाचित् मुखतें सुन्या नहीं है, अरु त्यागका अभिमान भी कदाचित् सुन्या नहीं है, कबहु गाते हैं, अरु बोलते हैं, तब ऐसे कहते हैं हाय हाय! मैं अनाथ मार्या गया हौं, अरे मूर्ख, तुम संसारसमुद्रमें क्यों डुबते हौं! यह संसार परम अनर्थका कारण है, इसमें सुख कदाचितहु नहीं है, इसतें छूटनेका उपाय करो.

हे राजन्! ऐसे भी कदाचित् हम सुनतें हैं, अरु किसीसाथ बोलते नहीं हैं, न हसते हैं, न मंत्रीके साथ, न अपने अंतःपुरकी स्त्रियोंके साथ, की न माताके साथ बोलते हैं, कोऊ परमचिंतामें मग्न हैं अरु किसी पदार्थकर आश्चर्यवान् नहीं होते, जो कोऊ कहै की आकाशमें बाग लगा है, तिसतें फूल फुले हैं, तिनकों मैं ले आया हौं; ऐसे सुनकर भी आश्चर्यवान् नहीं होते, सब भ्रममात्र देखते हैं, न किसी पदार्थतें उनकों हर्ष होता है, न किसी पदार्थतें उनकों शोक होता है, किसी बडी चिंतामें मग्न हैं, सो कोऊ चिंता निवारनेमें हम समर्थ नहीं देखते हैं; वह तौ चिंताके समुद्रमें मग्न हैं. हे राजन्! यह चिंता हमकों लग रही है; जो रामजीकों न खानेकी इच्छा है; न पहिरनेकी इच्छा है, न बोलनेकी, न देखनेकी इच्छा रही है, न कोऊ कर्मकी इच्छा रही है, ताते मृतक न हो जावे! ऐसी चिंता है; अरु जो कोऊ कह-

ता है; की तूं चक्रवर्त्ती राजा है; तेरो बडो आयबल होहु, अरु बडे सुखकों पाओ, तब तिसके वचन सुनकर कठोर बोलते हैं.

हे राजन् ! केवल रामजीकोंही ऐसी चिंता नही, लक्ष्मण अरु शत्रुघ्नको भी ऐसी चिता लग रहि है, रामकों देखकर जो कोऊ उनकी चिंता दूर करनहारा होवे तो करो; नही तो बडी चिंतामेंही डूबी रहेंगे; किसी पदार्थकी इच्छा उनकों नहीं रहत है.

हे राजन्! और कहा कहो! तुमारा पुत्र अब अतीत होय रह्या है, एक वस्त्र उपरना ओढी बैटा है, ताते सोइ उपाय करो, जिसकर उनकी चिता निवृत्त होवे.

विश्वामित्र उवाच—हे साधु! जो रामजी ऐसे है, तो हमारे पास लाओ, हम उसका दुःख निवृत्त करेंगे. हे राजा दशरथ! तुम धन्य हौ! जिसका पुत्र विवेक अरु वैराग्यकों प्राप्त भया. हे राजन्! हम जो बैठे हैं; सो तुमारे पुत्रकों परमपदकी प्राप्ति करेंगे, अबी सब दुःख उनके मिट जायेंगे, हम वसिष्ठादि जो बैठे हैं; सो एक युक्तिकरि उपदेश करेंगे; तिसकर उनकों आत्मपदकी प्राप्ति होवेगी, तब वह दशा तेरे पुत्रकी होवेगी, जो लोष्ट अरु पत्थर अरु सुवर्णकों समान जानेंगे, अरु जो कछु तुमारे क्षत्रियकी प्रकृतिका आचरण है सो करेंगे; अरु हृदयमें प्रेमतें उदासी होवेंगे; ताते हे

राजन्! उसकर तुमारा कुल कृतकृत्य होवैगा, तातें रामजीकों शीघ्र बोलावहु.

वाल्मीक उवाच—हे भारद्वाज! ऐसे मुनींद्रके वचन सुनकर राजा दशरथ मंत्री अरु नौकरकों कहत भया; जो रामजी अरु लक्ष्मण अरु शत्रुघ्नकों साथ ले आओ; जैसे हरिणीकों हरिण ले आते हैं, तैसे ले आओ. जब राजा दशरथनें ऐसा कहा, तब मंत्री अरु भृत्य रामजीके पास जायके कह्या; तब रामजी आये; सो आवत आवत राजा दशरथ, अरु वसिष्ठजी, अरु विश्वामित्रकों देखे, तिनोंके पर चमर होय रहे हैं; अरु बडे मंडलेश्वर बैठे हैं, तिननेंहु रामजीकों देखे, जो शरीरतें कृश होय रहे हैं; जैसे महादेवजी स्वामी कार्तिककों आवत देखे, तैसे रामजीकों आते राजा दशरथ देखत हैं; तहां रामजी आयकर राजा दशरथजीके चरणपें मस्तक लगाय नमस्कार किया, फेर तैसेंई वसिष्ठजीकों अरु विश्वामित्रकों नमस्कार किया; बहुरि सभामें जो ब्राह्मण बडे बडे बैठे थे, तिनकोंहु नमस्कार किये; अरु जो बडे बडे मंडलेश्वर बैठे थे, तिननें उठकर रामजीकों प्रणाम किया.

फिर राजा दशरथनें रामजीकों गोदमें बैठाया; अरु देखकर मस्तक चुंब्या; अरु बहुत प्रेमपुलकित होय रामजीकों कहत भया; हे पुत्र! केवल विरक्तताकर परम-

पदकी प्राप्ति नहीं होती है; अरु वसिष्ठजी गुरु हैं, तिनकों उपदेशकी युक्तिकर परमपदकी प्राप्ति होयगी.

वसिष्ठ उवाच—हे रामजी ! तुम धन्य हो ! अरु बडे सूरमा हो, जो विषयरूपी शत्रु तुमने जीते हैं, विषय अजित हैं, अरु दुष्ट हैं, ताकों तुमने जीते, ताते तुम धन्य हो ! धन्य हो ! !

विश्वामित्र उवाच—हे कमलनयन राम ! अपने अंतरकी चपलता है, तिसकों त्याग करके जो कछु तुमारा आशय होय सो प्रगट कर कहो. हे रामजी ! यह जो तुमकों मोह प्राप्त हुआ है, सो कैसे हुआ है? अरु किस कारण हुआ है ! अरु केताक है ! सो कहो, अरु जो अब कछु तुमकों वांछित होय सो कहो, हम तुमको तिसी पदमे प्राप्त करेंगे, जिसमे दुःख कदाचित् होवै नहीं, औ आकाशको चुहा काटी नहीं सकत है; तैसे तुमकों पीडा कदाचित् न होवेगी. हे रामजी ! तुमारे संपूर्ण दुःख नाशकर देयगे, तुम संशय मत करो; जो कछु तुमारा वृत्तांत होय सो हमकों कहो.

वाल्मीक उवाच—हे भारद्वाज ! जब ऐसे विश्वामित्रनें कहा, सो सुनकर रामजी बहुत प्रसन्न भये; अरु शोकको त्याग दिया, जैसे मेघकों देखके मोर प्रसन्न होता है, तैसे विश्वामित्रके वचन सुनकर राम-

जी प्रसन्न हुए, अरु अपने हृदयमें निश्चय किया, जो अब मुझकों उस पदकी प्राप्ति होवैगी.

इति श्रीयोगवासिष्ठे वैराग्यप्रकरणे रामसमाजवर्णनं नाम षष्ठः सर्गः ॥ ६ ॥

सप्तमः सर्गः ७.

अथ रामेण वैराग्यवर्णनं

वाल्मीक उवाच—हे भारद्वाज ! ऐसे मुनीश्वरके वचनकों रामजी सुनके बहुत प्रसन्न होयके बोले.

श्रीराम उवाच—हे भगवन् ! जो वृत्तांत है; सो तुमारे विद्यमान क्रम करके कहता हौं; इस राजा दशरथके घरमें जो जन्म पाया हौं; बहुरि क्रम करके बडा हुआ हौं; औ उपवीत पाया हौं, अरु चारों वेद पढकर ब्रह्मचर्यादि व्रत पाया हौं, तापाछे एक दिन पडिके मैं घरमें आया, तब मेरे हृदयमें बात आय रही जो तीर्थाटण करों, अरु देवाद्वारमें जायके देवनके दर्शन करों; तब मैं पिताकी आज्ञा लेकर तीर्थकों गया, अरु गंगा आदि संपूर्ण तीर्थमें स्नान किया; अरु शालिग्राम अरु केदार आदिठाकुरके विधिसंयुक्त दर्शन किये; अरु यात्रा करके इहां आया, फिर उत्साह हुआ.

तब मेरेमें विचार आया, जो प्रातःकाल उठके स्ना-

नसंध्यादिक कर्म करना, बहुरि भोजन करना, ऐसे इस प्रकारसों केतेक दिन व्यतीत भये, तब मेरे हृदयमें विचार उत्पन्न हुआ, सो विचार मेरे हृदयकों खेंच ले गया, जैसे नदीके तटपर तृणवल्ली होत है; तिसकों नदीका प्रवाह खेंच ले जाता है; तैसे मेरे हृदयमें जो कछु रजतकी आस्थारूप वल्ली थी सो विचाररूपी प्रवाह ले गया, तब म जानत भया जो राज्य करके क्या है, अरु भोगतें क्या है, अरु जगत् क्या है? सब भ्रममात्र है, इसकी वासना मूर्ख रखते हैं, यह स्थावरजंगमरूपी जेता कछु जगत् है, सो सब मिथ्या है.

हे मुनीश्वर! जेते कछु पदार्थ हें सो मनसो करके है, सो मन भी भ्रममात्र हे, अन होता मन दुःखदाई हुआ है, मन जो पदार्थ सत्य जानकर दौरता है, अरु सुखदायक जानता है, सो मृगतृष्णाके जलवत् है, जैसे मृगतृष्णाकों देखकर मृग दौरते हैं, अरु हे नहीं; सो मृग दौरत दौरत थकके पड जाते हे, तौहू जल तिसकों प्राप्त नहीं होता, तैसे मूर्ख जीव पदार्थकों सुखदाई जानकर भोगनेका यत्न करता है; अरु शांतिकों नहीं पावता है, तैसे.

हे मुनीश्वर! इंद्रियके भोग सर्पवत् हैं, जिनका मार्या हुआ जन्ममरणकों पावता है; जन्मतें जन्मांतरकों पावता हे; भोग अरु जगत् सब भ्रममात्र हैं, तिनविषे जो

आस्था करते हैं, सो महामूर्ख हैं, ऐसा में विचार करके जानता हों जो सब आगमापायी हैं; अर्थ यह, जो आवतेहू हैं, तातें जिस पदार्थका नाश न होय, सो पदार्थ पावने योग्य है; इसी कारणतें मैं भोगका त्याग किया है.

हे मुनीश्वर! जेते जो कछु संपदारूप पदार्थ भासते हैं, सो सब आपदा है, इनमें रंचकहू सुख नहीं है, जब इनका वियोग होता है, तब कंटककी नाईं मनमें चुभता है, जब इंद्रियकों भोग प्राप्त होता है, तब राग दोपकर जलते हैं; अरु जब नहीं प्राप्त होता तब तृष्णाकर जलते हैं, तातें भोग दुःखरूप हैं; जैसे पथ्थरकी शिलामें छिद्र नहीं होता, तैसे भोगरूपी दुःखकी शिलामें रंचक भी सुखरूपी छिद्र नहीं होता है.

हे मुनीश्वर! विषयकी तृष्णामें बहुत कालसों जलता रह्या हों. जैसे हर्या वृक्षके छिद्रमें रंचक अग्नि धर्‍या होय, तब धूंवा होय थोरा थोरा जलता रहता है; तैसे भोगरूपी अग्निकरके मन जलता रहता है; इन विपयमें सुख कछुहू नहीं; अरु दुःख बहुत है, इनकी इच्छा करनी सोई मूर्खता है, जैसे खाईके उपर तृण अरु पान होता है, तिसकर खाई आच्छादित होय जाती है, तिसकों देखके हरिण कूद परता है अरु दुःख पावता है; तैसे मूर्ख भोगकों सुखरूप जानिके भोगनेकी इच्छा

करता है; जब भोगता है तब जन्मतें जन्मांतररूपी खाईमे जाय परता है, अरु दुःख पावता है.

हे मुनीश्वर! भोगरूपी चोर है; सो अज्ञानरूपी रात्रमे लूटने लगता है; सो आत्मरूपी धन है, तिसकों ले जाता है, तिसके वियोगतें महादीन रहता है, अरु जिस भोगके निमित्त यह यत्न करता है, सो दुःखरूप है; शांतिकों प्राप्त नहीं होता; अरु जिस शरीरका अभिमान करके यह यत्न करता है, सो शरीर क्षणभंग होता है; अरु असार है. जिसको सदा भोगकी इच्छा रहती है, सो मूर्ख अरु जड है; इसका बोलना चलना भी ऐसा है, जैसे सूके वांशके छिद्रमें पवन जाता है; अरु पवनके वेगकर शब्द होता है; तैसे उस मनुष्यकों वासना है; जैसे थक्या हुआ मनुष्य मारवारके मार्गकी इच्छा नहीं करता, तैसे दुःख जानकर मैं भोगकी इच्छा नहीं करता हो.

अरु यह जो लक्ष्मी है, सो परम अनर्थकारी है, जबलग इसकी प्राप्ति नहीं होती, तबलग इसको पावनेका यत्न होता है; अरु अनर्थ करके प्राप्ति होती है, अरु जब प्राप्ति हुई, तब सब गुणनका नाश कर देती है शीलता, संतोष, धर्म, उदारता, कोमलता, वैराग्य, विचार, दयादिक गुणनका नाश करती है; जब ऐसा गुणनका नाश हुआ, तब सुख कहांतें होय! परम आप-

दा प्राप्त होती है, परम दुःखका कारण जानकर मैं इसका त्याग किया है. हे मुनीश्वर! इसमें गुण तबलग है, जबलग लक्ष्मी नहीं प्राप्त भई; जब लक्ष्मीकी प्राप्ति भई, तब सब गुण नाश हो जाता है; जैसे वसंतऋतुकी मंजरी हरियावल तबलग रहती है, जबलग ज्येष्ठ आषाढ नहीं आया; जब ज्येष्ठ आषाढ आया, तब मंजरी जर जाती है; तैसे जब लक्ष्मीकी प्राप्ति भई तब शुभ गुण जर जाते हैं, अरु मधुर वचन तबलग बोलता है, जबलग लक्ष्मीकी प्राप्ति नहीं है। जबही लक्ष्मीकी प्राप्ति भई, तब कोमलताका अभाव होय कठोर हो जाता है; जैसे जल पतरा तबलग रहता है; जबलग शीतलताका संयोग नहीं होय, जब शीतलताका संयोग होता है, तब बरफ होकर कठोर दुःखदायक होय जाता है; तैसे यह जीव लक्ष्मीसोंकर जड होय जाता है.

हे मुनीश्वर! जो कछु संपदा है सो आपदाका मूल है; काहेतें जो जब लक्ष्मीकी प्राप्ति होती है, तब बडे सुखकों भोगता है; अरु जब तिसका अभाव होता है, तब तृष्णाकरके जलता है, जन्मतें जन्मांतरको पावता है; लक्ष्मीकी इच्छा है, सोई मूर्खता है; यह तो क्षणभंग है; यातें भोग उपजता है, अरु नाश भी होता है; जैसे जलतें तरंग उपजते हैं, अरु मिट जाते हैं. बिजुरी स्थिर नहीं होती है, तैसे भोगहु स्थिर नहीं रहते; अरु

पुरुषमें शुभ गुण तबलग है, जबलग तृष्णाका स्पर्श नहीं किया, जब तृष्णा भई तब शुभ गुणका अभाव होय जाता है; जैसे दूधमे मधुरता तबलग है, जबलग सर्पनें स्पर्श नहीं किया, जब सर्पनें स्पर्श किया तब दूध है सो विषरूप हो जाता है.

इति श्रीयोगवासिष्ठे वैराग्यप्रकरणे रामेण वैराग्यवर्णनं नाम सप्तमः सर्गः ॥ ७ ॥

अष्टमः सर्गः ८.

अथ लक्ष्मीनैराश्यवर्णन

श्रीराम उवाच—हे मुनीश्वर! लक्ष्मी देखनें मात्रही सुंदर है, अरु जब इसकी प्राप्ति हुई तब सद्गुणका नाश कर देती है. जैसे विषकी वल्ली देखनें मात्र सुंदर है, अरु स्पर्श कियेतें मार डारती है, तैसे लक्ष्मीकी प्राप्ति हुए, आत्मपदतें मृतक होता है; अरु महादीन होय जाता है; जैसे किसीके घरमें चिंतामणी दबी रही, ताकों खोदकर लेवै नहीं, तबलग दरिद्री रहता है, तैसे अज्ञानकर ज्ञानविना महादीन जैसा हो रहता है; आत्मानंदकों पाई नहीं सकता; आत्मानंदकों पालनेका जो मार्ग है, तिसके नाश करनहारी लक्ष्मी है; इसकी प्राप्तिते जीव महाअंध होय जाता है.

हे मुनीश्वर ! जब दीपक प्रज्वलित होता है, तब उसका बडा प्रकाश दृष्ट आवता है; जब दीपक बुज जाता है तब प्रकाशका अभाव होय जाता है, अरु काजरकी श्यामता रही जाती है; जो वारंवार वासना उपजती थी, सो रहती है, तैसे जब इस लक्ष्मीकी प्राप्ति होती है; तब बडे भोग उनकों भुगवाती है; अरु तृष्णारूप काजर उसतें उपजता रहता है; जब लक्ष्मीका अभाव होता है; तब वासना तृष्णाकी श्यामता छांड जाती है; तिस वासना तृष्णा करके अनेक जन्मकों अरु मरणकों पावता है; शांतिकों कदाचित् नहीं प्राप्त होता.

हे मुनीश्वर ! जब जिसकों लक्ष्मीकी प्राप्ति होती है; तब शांतिके उपजावनहारे गुणका नाश करती है. जैसे जबलग पवन नहीं चलता, तबलग मेघ रहता है. जब पवन चल्या के मेघका अभाव हो जाता है, तैसे लक्ष्मीकी प्राप्ति हुए गुणका अभाव होता है, अरु गर्वकी उत्पत्ति होती है.

हे मुनीश्वर ! जो सूरमा होइके अपने मुखतें अपनी बडाई न कहै, सो दुर्लभ है, अरु समर्थ होय कोईकी अवज्ञा न करै, सबमें समबुद्धि राखै, सो दुर्लभ है, तैसे लक्ष्मीवान् होकर शुभगुणसंयुक्त होय सो भी दुर्लभ है.

हे मुनीश्वर ! तृष्णारूपी जो सर्प है, तिसको बढावनेका स्थान लक्ष्मीरूपी दूध है, सो पीवत पवनरूपी

भोगका आहार करत कदाचित् अघात नहीं; अरु महामोहरूप उन्मत्त हस्ती है, तिसकों फिरनेका स्थान पर्वतकी अटवीरूपी लक्ष्मी है, अरु गुणरूप जो सूर्यमुखी कमल है, तिसकी लक्ष्मी रात्री है, अरु भोगरूपी चंद्रमुखी कमल है, तिनका लक्ष्मी चंद्रमा है; अरु वैराग्यरूप जो कमलनी है, तिसका नाश करनेहारी लक्ष्मी बरफ है, अरु ज्ञानरूपी जो चंद्रमा है, तिसका आच्छादन करनेहारी लक्ष्मी राहु है; अरु मोहरूपी जो उल्लूक है, तिसकी यह रात्री है; अरु दुःखरूपी जो बिजुरी है, तिसकों लक्ष्मी आकाश है; अरु तृष्णारूपी जो वल्ली है, तिसको बढावनेहारी लक्ष्मी मेघ है; अरु तृष्णारूप जो तरंग है, तिसकी लक्ष्मी समुद्र है, अरु भोगरूपी पिशाच है, तिनकी लक्ष्मी रात है; अरु तृष्णारूपी भंवरको लक्ष्मी कमलनी है; जन्मके दुःखरूप जलका यह लक्ष्मी खड्डा है.

हे मुनीश्वर ! देखने मात्र यह सुंदर लगती है अरु दुःखका कारण है, जैसे खड्गकी धारा देखने मात्र सुंदर होती है, अरु स्पर्श कियेतें नाश करती है, तैसी यह लक्ष्मी है, सो विचाररूपी मेघका नाश करनेमें वायु जैसी है.

हे मुनीश्वर ! यह मैं विचारि देख्या है; इसमें सुख कछुहू नहीं. अरु संतोषरूपी मेघका नाश करनेहारा

यह शरत्काल है; अरु इस मनुष्यमें गुण तबलग दृष्ट आवें, जबलग लक्ष्मी प्राप्ति नहीं भई; जब लक्ष्मीकी प्राप्ति भई, तब शुभ गुण नाश पावते हैं.

हे मुनीश्वर! लक्ष्मी ऐसी दुःखदायक जानकर इनकी इच्छा मैंने त्याग दीनी है; यह भोग मिथ्यारूपी है, जैसे बिजुरी प्रगट होय छिप जाती है; तैसे यह लक्ष्मीहु प्रगट होय छिप जाती है; जैसे जल है सो हिम है, तैसे लक्ष्मीकी ज्योति है, सो मूर्ख जडके आश्रयतें है; इसकों छलरूप जानकर मैंनें त्याग किया है.

इति श्रीयोगवासिष्ठे वैराग्यप्रकरणे लक्ष्मीनैराश्यवर्णनं नामाष्टमः सर्गः ॥ ८ ॥

नवमः सर्गः ९.

अथ संसारसुखनिषेधवर्णनं



राम उवाच—हे मुनीश्वर! जो वाकों देखकर प्रसन्न होता है, सो मूर्ख है; काहेतें, जैसे पत्रके उपर जलकी बूंद न रहती है, तैसे लक्ष्मी क्षणभंग है; जैसे जलके तरंग होयके नाश पावते हैं, तैसे लक्ष्मी होयके नाश पावती है.

हे मुनीश्वर! पवनकों रोकना कठिन है, सो भी कोउ रोकता है; अरु आकाशका चूर्ण करना अति

कठिन है, सो भी कोउ करडारै, अरु बिजुरीको रोकना अति कठिन है, सो भी कोउ रोके है, परंतु लक्ष्मी पायके कोउ स्थिर होवै सो नहीं; जैसे शशाके सिंगसों कोउ मार नहीं शकता; अरु आरशीके उपर जैसे मोती नहीं ठहरता है, जैसे तरंगकी गांठ नहीं परत है; तैसे लक्ष्मीहु स्थिर नहीं रहती है; लक्ष्मी बिजुरीका चमका जैसी है, सो होतीहु है; अरु मिट भी जाती है, अरु लक्ष्मी पायके आपको अमर हुआ चाहै, सो महामूर्ख जानना अरु लक्ष्मीकों पायकर जो भोगकी वांछा करत है सो महा आपदाका पात्र है, तिनको जीवनेते मरना श्रेष्ठ है; जीवनेकी आशा मूर्ख करते हैं, सो अपने नाशके निमित्त करते हैं; जैसे स्त्री जो गर्भकी इच्छा करती है सो अपने नाशके निमित्त करती है.

अरु ज्ञानवान् पुरुष हैं, जिनकी परमपदमे स्थिति है, अरु तिसकर तृप्ति पाये हैं, तिनका जीवना सुखके निमित्त है; तिनके जीवनेते औरका कार्य भी सिद्ध हो जाता है, तिनका जीवना चिंतामणिकी नांई श्रेष्ठ है; अरु जिनको सदा भोगकी इच्छा रहती है औ आत्मपदतें विमुख हैं तिनका जीवना किसी सुखके निमित्त नहीं है, वह मनुष्य नहीं, गर्दभ है, अरु जैसे वृक्ष पक्षी पशुका जीवना है, तैसे तिनका भी जीवना है.

हे मुनीश्वर! जो पुरुष शास्त्र पढ्या है अरु पावने योग्य पद नहीं पाया, तब शास्त्र उसकों भाररूप है, जैसे ओरका भार होता है; तैसे पढनेका भी भार है, अरु पढके विचारचर्चा करता है, औ तिसके सारकों नहीं ग्रहण करता; तौ यह विचारचर्चाहु भार है.

हे मुनीश्वर! मन जो है सो आकाशरूप है, सो मनमें जो शांति न आई, तौ मनहु उसकों भार है; अरु जो मनुष्य शरीरकों पाया है, उसका अभिमान नहीं त्यागता है; तौ यह शरीर भी उसकों भार है, इस शरीरका जीवना तबही श्रेष्ठ है! जब आत्मपदकों पावे, अन्यथा उसका जीवना व्यर्थ है, औ आत्मपदकी प्राप्ति अभ्यासकर होती है. जैसे जल पृथ्वीतें खोदेतें निकसता है, तैसे अभ्यासकर आत्मपदकी प्राप्ति होती है, अरु जो आत्मपदतें विमुख होय आशाकी फांसीमें फसे है, सो संसारमें भटकत रहता है.

हे मुनीश्वर! संसारके तरंग अनेक कालसों उत्पन्न होय नष्ट होय जाते हैं तैसे यह लक्ष्मीहु क्षणभंग है. इसकों पायके जो अभिमान करता है सो मूर्ख है; जैसे बिल्ली चूवाको पकडनेके लिये परी रहती है तैसे लक्ष्मी उसकों नरकमें डारनेके लिये घरमें परी रहती है; जैसे अंजलीमें जल नहीं ठहरता, तैसे लक्ष्मी चली जाती है; ऐसी क्षणभंग लक्ष्मी अरु शरीरकों पायकर जो भोगकी

तृष्णा कहत है सो महामूर्ख है, सो मृत्युके मुखमें परे हुए जीवनेकी आशा करते हैं, जैसे सर्पके मुखमे मेंडुक पडता है सो मच्छरकों खावनेकी इच्छा करता है, यातें सो मूर्ख है, तैसे यह पुरुष मृत्युके मुखमें पड्या हुआ भोगकी वांछा करता है, सो महामूर्ख है.

अरु जुवा अवस्था नदीके प्रवाहकी नांई चली जाती है, बहुरी वृद्धावस्था प्राप्त होती है, तामें महादुःख प्रगट होते हैं; अरु शरीर जर्जर होय जाता है, फिर मरता है; इक क्षणहु मृत्यु इनकों विसारत नहीं है; सदाई देखत रहता है, जैसे महाकामी पुरुषको सुंदर स्त्री मिलती है, तब उसकों देखनेका त्याग नहीं करता, तैसे मृत्यु मनुष्यकों देखेविना नहीं रहता है.

हे मुनीश्वर! मूर्ख पुरुषका जीवना दुःखके निमित्त है; जैसे वृद्धमनुष्यका जीवना दुःखका कारण है तेसे अज्ञानीका जीवना दुःखका कारण है, उसको बहुत जीवनेतें मरना श्रेष्ठ है, जो पुरुषनें मनुष्यशरीर पायकर आत्मपद पावनेका यत्न नहीं किया तिननें आपई आपका नाश किया है, सो आत्महत्यारा है.

हे मुनीश्वर! यह माया बहुत सुंदर भासती है, परंतु आखर नाशकों पावती है, जैसे वृक्षको अंतरतें घुना खाय जाता है, अरु बाहिरते बहुत सुंदर दिखता है, तैसे यह पुरुष बाहिरतें सुंदर दृष्ट आवता है, अरु

अंतरतें इनकों तृष्णा खाय जाती है, जो पदार्थकों सत्य अरु सुखरूप जानकर सुखके निमित्त आश्रय करता है, सो सुखी नहीं होता है, जैसे नदीमें सर्पकों पकडके पार उतर्या चाहै, सो पार नहीं उतरता है, वह मूर्खता करके डुबेइगा, तैसे जो संसारके पदार्थकों सुखरूप जानकर आश्रय करता है, सो सुख नहीं पावता; संसारसमुद्रमेंई डुब जाता है.

हे मुनीश्वर ! यह संसार इंद्रधनुष्यकी नांई है; जैसे इंद्रधनुष्य बहुत रंगका दृष्टिमें आवता है; अरु तिसतें अर्थसिद्धि कछु नहीं होती है, तैसे यह संसार भ्रममात्र है; इसमें सुखकी इच्छा रखनी व्यर्थ है; इस प्रकार जगत्कों में असद्रूप जानकर निर्वासना होनेकी इच्छा करी है.

इति श्रीयोगवासिष्ठे वैराग्यप्रकरणे संसारसुखनिषेधवर्णनं नाम नवमः सर्गः ॥ ९ ॥

दशमः सर्गः १०.

अथ अहंकारदुराशावर्णन

श्रीराम उवाच–हे मुनीश्वर ! यह जो अहंकार उदय हुवा है, सो अज्ञानतें महादुष्ट है, अरु यही परमशत्रु है, इसनें मेरेकों मार प्राप्त किया है, अरु मि-

ध्या है, जेते कछु दुःख हैं, तिनकी खानी अहंकार है; जबलग अहंकार है, तबलग पीडाकी उत्पत्तिका अभाव कदाचित् नहीं होता है.

हे मुनीश्वर! जो कछु मै अहंकारसों भजन किया, अरु पुण्य किया है, अरु जो लिया दिया है; औ कछु किया है, सो सब व्यर्थ हैं; इसकर परमार्थकी सिद्धि कछु नहीं है. जैसे राखमें आहुति धरी व्यर्थ हो जाती है, तैसे जानत हों; अरु जेते कछु दुःख हैं; जिनका बीज अहंकार है; इसका नाश होवै तब कल्याण होवै, तातें तुम इसका उपाय मुझकों कहौ, जिसकर अहंकार निवृत्त होवै.

हे मुनीश्वर! जो वस्तु सत्य है, तिसका त्याग करनेमें दुःख होता है; अरु जो वस्तु नाशवान अरु भ्रम करके दिखती है, तिसके त्याग करनेतें आनंद है; अरु शांतिरूप जो चंद्रमा है, तिसकों आच्छादन करनेका अहंकाररूपी राहु है, जब राहु चद्रमाका ग्रहण करता है, तब उसकी शीतलता अरु प्रकाश ढप जाती है, तैसे जब अहंकार उपजता है, तब समता ढप जाती है, जब अहंकाररूपी मेघ गरजके बरखता है, तब तृष्णारूपी कंटकमंजरी बढ जाती है, सो कदाचित् घटत नहीं, जब अहंकारका नाश होवै तब तृष्णाका अभाव होवै, जैसे जबलग मेघ है, तबलग बिजुरी है, जब विवे-

करूपी पवन चलै, तब अहंकाररूपी मेघका अभाव होयके विज्ञरी नाश पावती है, जैसे जबलग तेल अ बाती है, तबलग दीपकका प्रकाश है, जब तेलबा तीका नाश होता है, तब दीपकका प्रकाश भी नाश पावता है, तैसे जब अहंकारका नाश होवै तब तृष्णा का भी नाश होता है.

हे मुनीश्वर! परम दुःखका कारण अहंकार है. जब अहंकारका नाश होवै, तब दुःखका भी नाश होय जाय. हे मुनीश्वर! यह जो मैं राम हों, सो नहीं, अरु इच्छा भी कछु नहीं; काहेतें जो मैं नहीं तौ इच्छा कि सकूं होवै; अरु इच्छा होई तो यही होई जो अहंकारके रहित पदकी प्राप्ति होवै; जैसे जनींद्रकों अहंकारका उत्थान नहीं हुआ, तैसा मैं होउं, ऐसी मुझकों इच्छा है.

हे मुनीश्वर! जैसे कमलकों वरफ नाश करता है, तैसे अहंकार ज्ञानका नाश करता है; जैसे पारधी जालसों पक्षीकों बंधन करता है, तिसकर पक्षी दीन हो जाते हैं, तैसे अहंकाररूपी पारधीनें तृष्णारूपी जाल डारके जीवकों बंधन किया है, तिसकर महादीन हो गया है; जैसे पक्षी अन्नके कणकों सुखरूप जानकर चुगनेकों आता है, फिर चुगते फिरते जालमें बंध जाता है; तिस बंधनकर दीन हो जाता है, तैसे यह पुरुष विषयभो गकी इच्छा कियेतें तृष्णारूपी जालमें बंधन होय म-

हादीन हो जाता है, तातें हे मुनीश्वर! मुझकों सोइ उपाय कहौ, जिसकर अहंकारका नाश होवै; जब अहंकारका नाश होवैगा तब मै परमसुखी होउंगा; जैसे विंध्याचल पर्वतके आश्रयतें उन्मत्त हस्ती पडे गरजते हैं, तैसे अहंकाररूपी जो विंध्याचल पर्वत है, तिसके आश्रयतें मनरूपी उन्मत्त हस्ती नानाप्रकारके संकल्पविकल्परूपी शब्द करता है, तातें सोइ उपाय कहौ जिसकर अहंकारका नाश होवै.

सो अहंकार अकल्याणका मूल है. जैसे मेघका नाश करनेहारा शरत्काल है, तैसे वैराग्यका नाश करनेहारा अहंकार है; मोहादिक विकाररूप जो सर्प हैं, तिनकों रहनेका अहंकाररूपी बिल है, अरु अहंकार कामी पुरुषकी नांई है; जैसे कामी पुरुष कामकों भुगता है, अरु फूलकी माला गलेमें डारके प्रसन्न होता है; तैसे तृष्णारूपी तागा है, अरु मनुष्यरूपी फूलके मनके हैं; सो तृष्णारूपी तागेके साथ परोये हैं सो अहंकाररूपी कामी पुरुष गलेमें डारता है, अरु प्रसन्न होता है.

हे मुनीश्वर! आत्मारूपी सूर्य है, तिसका आवरण करनेहारा मेघरूपी अहंकार है, जब ज्ञानरूपी शरत्काल आवै, तब अहंकाररूपी मेघका नाश हो जाता है; अरु तृष्णारूपी तुषारका भी नाश होवै.

हे मुनीश्वर ! यह निश्चयकरि मैंने देख्या है, जो

जहां अहंकार है, तहां सब आपदा आय प्राप्त होती है, जैसे समुद्रमें सब नदी आयके प्राप्त होती है, तैसे अहंकारमें सब आपदाकी प्राप्ति है तातें सोई उपाय कहो जिसकर अहंकारका नाश होवे.

इति श्रीयोगवासिष्ठे वैराग्यप्रकरणे अहंकारदुराशावर्णनं नाम दशमः सर्गः ॥ १० ॥

एकादशः सर्गः ११.

अथ चित्तदौरात्म्यवर्णनं

श्रीराम उवाच—हे मुनीश्वर! यह जो मेरा चित्त है, सो काम, क्रोध, लोभ, मोह, तृष्णादिक दुःखकर जर्जरीभाव हो गया है, अरु महापुरुषके जो गुण, वैराग्य, विचार, धैर्य, संतोष, तिनकी ओर नहीं जाता. सर्वदा विषयकी गिरदमें उडता है; जैसे मोरका पंख पवनके लागे ठहरता नहीं, तैसे यह चित्त सर्वदा भटकत फिरता है,अरु इसको लाभ कछु प्राप्त नहीं होता, जैसे श्वान द्वारद्वारपें भटकत फिरता है, तैसे यहचित्त पदार्थके पावनेंनिमित्त भटकत फिरता है, औ प्राप्त कछु नहीं होता; अरु जो कछु प्राप्त होता है, तिसकरि तृप्त नहीं होता; अंतर तृष्णा रही जाती है. जैसे पिटारेमें जल भरियें, तासों वह पूर्ण नहीं होता, क्यौं जो छिद्रतें जल

निकस जाता है, अरु पिटारा शून्यका शून्य रहता है; तैसे चित्तकों भोगपदार्थ प्राप्त होता है, तासों संतुष्ट नहीं होता है, सदा तृष्णाई रहत है.

हे मुनीश्वर! यह चित्तरूपी महामोहका समुद्र है, तिसमें तृष्णारूपी तरंग उठतेई रहते हैं; सो कदाचित् स्थिर नहीं होता; जैसे समुद्रमे तीक्ष्ण वेगकर तरंग होता है, सो तटके वृक्षनकों लगता है, वे तरु जलमें वहे जाते हैं तैसे चित्तरूपी समुद्रमें विषय वह्या जाता है, वासनारूपीतरंगके वेगसों मेरा जो अचल स्वभाव था, सो चलायमान हो गया है; सो इस चित्तसो मैं महादीन हुआ हों; जैसे जालमें पर्या पक्षी दीन हो जाता है, तैसे चित्त धीवरकी वासनारूपी जालमे वध्या हुआ मैं दीन हो गया हों; जैसे मृगके समूहतें भूली मृगी अकेली खेदवान होती है, तैसे मैं आत्मपदतें भूल्या हुवा चित्तमें खेदवान हुआ हों.

हे मुनीश्वर! यह चित्त सदा क्षोभवान रहता है, कदाचित् स्थिर नहीं होता, जैसे क्षीरसमुद्र मंदराचल करके क्षोभवान हुआ था, तैसे यह चित्त संकल्पविकल्पकर खेद पावत है, जैसे पिंजरेमे आया सिंह पिंजरेमें फिरता है, तैसे वासनामें आया चित्त स्थिर नहीं होता.

हे मुनीश्वर! इस चित्तनें मेरेकों दूरतें दूर डार्या है, जैसे भारी पवनसों सूका तृण दूरतें दूर जाय परता है,

तैसे चित्तरूपी पवननें मुझकों आत्मानंदतें दूर डार्या है. जैसे सूके तृणकों अग्नि जरावती है, तैसे मोकों चित्त जारता है; जैसे अग्नितें धूम निकसते हैं,तैसे चित्तरूपी अग्नितें तृष्णारूपी धूम निकसता है, तिसकर मैं परमदुःख पावता हों, यह चित्त हंस नहीं बनता है; जैसे राजहंस दूध अरु जल मिलेकों भिन्न भिन्न करता है, तिसकी नांई मैं अनात्मासाथ अज्ञान करके एकसा होगया हों, तिसकों भिन्न नहीं करी शकता हों; जब आत्मपद पावनेका यत्न करता हों, तब अज्ञान प्राप्त करने नहीं देता; जैसे नदीका प्रवाह समुद्रमें जाता है, तिसकों पहार सूधे चलनें नहीं देता है अरु समुद्रकी ओर जानें नहीं देता है; तैसे मुझकों चित्त आत्माकी ओरते रोंकता है; सो परमशत्रु है. हे मुनीश्वर! तातें सोइ उपाय कहो, जिसकर चित्तरूपी शत्रुका नाश होवै.

यह तृष्णा मेरा भोजन करती रहती है; जैसे मृतक शरीरकों श्वान अरु श्वाननी भोजन करते हैं, तैसे आत्माके ज्ञानविना मैं मृतकसमान हों, जैसे बालक अपनी परछाहीकों वैताल मानकर भयकों पावता है, सो जब विचार करके समर्थ होता है, तब वैतालका भय पावता नहीं; तैसे चित्तरूपी वैतालनें मेरा स्पर्श किया है; तिसकर मैं भयकों पावता हों; तातें तुम सोई उपाय कहो; जिसतें चित्तरूपी वैताल नष्ट होय जावै.

हे मुनीश्वर! अज्ञान करके मिथ्या वैताल चित्तमे दृढ हो रह्या है, तिसके नाश करनेको में समर्थ नहीं हो शकता हों, अग्निमें बेठना सो भी मैं सुगम जानता हों, औ चलके वडे पर्वतके उपर जानां सो भी मैं सुगम मानता हों, अरु वडे वज्रका चूर्ण करनां यह भी मैं सुगम मानता हों, परंतु चित्तका जीतना महाकठिन हे, ऐसा मैं जानता हों; चित्त सदाई चलायमान् स्वभाववाला हे; जैसे स्तंभकेसाथ बांध्या हुवा वानर कदाचित् स्थिर होय नहीं बैठता, तैसे चित्त वासनाके मारे स्थिर कदाचित् नहीं होता है. हे मुनीश्वर! वडा समुद्रका पानकर जाना सुगम है, अरु अग्निका भक्षण करना भी सुगम हे, औ सुमेरुका उलंघन करना सो भी सुगम है; परंतु चित्तकों जीतना महाकठिन है; जो सदा चलरूप है. जैसे समुद्र अपना द्रवस्वभावका कदाचित् नहीं त्याग करता, अरु महाद्रवीभूत रहता है तिसकर नानाप्रकारके तरंग होते हैं, तैसे चित्त भी चंचलस्वभावकों कवी न त्यागता है; नानाप्रकारकी वासना उपजती रहती है, अरु वालककी नांई चंचल है, सदा विषयकी और धावता है, कहुं पदार्थकी प्राप्ति होती है, परंतु अंतरतें सदा चंचल रहता है, जैसे सूर्यके उदय हुए दिन होता है, अरु अस्त हुएतें नाश पावता है; तैसे

चित्तके उदय हुए त्रिलोकीकी उत्पत्ति है, अरु चित्तके लीन हुएतें लीन हो जाती है.

हे मुनीश्वर! काउ समुद्रमें जल गंभीर है, तिसमें बडे सर्प रहते हैं, सो जब काउ समुद्रमें प्रवेश करै, तब वह सर्प उनकों काटते हैं, तिनकों विष चढ जाता है, तिसकर बडा दुःख पावते हैं, सो दृष्टांत सुनीयें. चित्तरूपी समुद्र है, अरु वासनारूपी जल है, तिसमें छलरूपी सर्प है, जब जीव उनके निकट जाता है, तब भोगरूपी सर्प उनकों काटते हैं; औ तृष्णारूपी विख पसरते हैं, तिसकर मरते हैं.

हे मुनीश्वर! जो भोगकों सुखरूप जानकर चित्त दोरता है, सो भोग दुःखरूप है. जैसे तृणसों खाई आच्छादित होय जाती है, तिसकों देखकर मूर्ख मृग खानेकों दोरता है, तब खाईमें गिर परता है, दुःख पावता है; तैसे चित्तरूपी मृग भोगका सुख जानकर भोगनेकों लगता है, तब तृष्णारूपी खाईमें गिर परता है, अरु जन्मांतर दुःखकों भुगता है.

हे मुनीश्वर! यह चित्त कबहु बडा गंभीर हो वैठता; औ जब भोगकों देखता है, तब तिनकी ओर चीलकी नांई लग परता है. जैसे चील पक्षी आकाशमें चढ फिरता है, सो जब पृथ्वीपर मांसको देखता है, तब तहांतें आय पृथ्वीपर वैठता है, अरु मांसकों लेता है, तैसे यह चित्त तबलग उदार है; जबलग भोगकों न देखता है,

जब विषय देखे तब आसक्ति पाय विषयमें गिर जाता है; अरु यह चित्त वासनारूपी शय्यामें सोया रहता है; अरु आत्मपदकी ओर जागता नहीं इस चित्तकी जालमें मैं पकराया हौं, सो कैसी जाल है, तामें वासनारूपी सूत्र है, अरु संसारकी सत्यतारूपी ग्रंथी है, अरु भोगरूपी तिसमें चून है; इसकों देखके मैं फस्या हौं; कबहु पातालमे, कबहु आकाशमें, वासनारूपी जेवरीकर घटीयंत्रकी नांई बंध्या हौं. तातें हे मुनीश्वर ! तुम सोइ उपाय कहौ जिसकर चित्तरूपी शत्रुकों जीतौं.

अब मुझकों किसी भोगकी इच्छा नहीं अरु जगत्की लक्ष्मी मुझकों विरस भासती है. जैसे चंद्रमा बादरकी इच्छा नहीं करता, अरु चतुर्मासेमें आच्छादित होय जाता है तैसे मैं भी भोगकी इच्छा नहीं करता, तौ भी भोग मेरे सन्मुख आते हैं, तातें जगत्की लक्ष्मीकों मैं नहीं चाहता, अरु मेरा चित्त है सो परम शत्रु है.

हे मुनीश्वर ! महापुरुष जो जीतनेका यत्न करते हैं, सो जब चित्तकों जीतें, तब परमपदकों पावें, तातें मुझकों सोइ उपाय कहौ, जिसकर मनकों जीतौं, सब दुःख इसके आश्रयतें रहते हैं, जैसे पर्वतपर वन है सो पर्वतके आश्रयतें रहता है.

इति श्रीयोगवासिष्ठे वैराग्यप्रकरणे चित्तदौरात्म्यवर्णन नाम एकादशः सर्गः ॥ ११ ॥

द्वादशः सर्गः १२.

अथ तृष्णागारुडीवर्णनं.



श्रीराम उवाच–हे ब्रह्मन्! चेतनरूपी आकाशमें जो तृष्णारूपी रात्रि आई है, तामें काम, क्रोध, लोभ, मोहादिक घुवड विचरते हैं, जब ज्ञानरूप सूर्य उदय होवै, तब तृष्णारूपी रात्रिका अभाव होय जावै; जब रात्रि नष्ट भई, तब मोहादिक उलूक भी नष्ट हो जाते हैं, जब सूर्यका उदय होता है, तब बरफ उष्ण होय पिगल जाता है; तैसे संतोषरूपी रसकों तृष्णारूपी उष्णता सुकावती है; बहुरि तृष्णा कैसी है; जैसे शून्य वनमें पिशाचनी अपने परिवारसहित फिरत रहती है, अरु प्रसन्न होती है; सो वन अरु पिशाच कैसा है; आत्मपदतें शून्य जो चित्त सो भयानक शून्य वन है; तिसमें तृष्णारूपी पिशाचनी है; अरु मोहादिक उसका परिवार है, उनकों साथ लेकर फिरती है.

हे मुनीश्वर! चित्तरूपी पर्वत है; तिसके आश्रयतें तृष्णारूपी नदीका प्रवाह चलता है; अरु नानाप्रकारके संकल्परूपी तरंगकों पसारते हैं; जैसे मेघकों देखकर मोर प्रसन्न होता है; तैसे तृष्णारूपी मोर भोगरूपी मेघकों देखके प्रसन्न होता है, तातें परम दुःखका मूल तृष्णा है. जब मैं किसी संतोषादि गुणका आश्रय कर-

ा हों, तब तृष्णा तिसकों नाश कर देती है. जैसे सुंदर सारंगीकों चूहा तोरि डारता है; तैसे संतोषादि गुणकों तृष्णा नाश करती है.

हे मुनीश्वर! सबतें उत्कृष्ट पदमें विराजनेका मैं यत्न करता हों. तब तृष्णा विराजने नहीं देती. जैसे जालमें फस्या हुआ पक्षी आकाशमें उडनेका यत्न करता है. परंतु उड नहीं सकता है; तैसे मैं अनात्मपदमेंतें आत्म; पदकों प्राप्त नहीं हो शकता; स्त्री, पुत्र, अरु कुटंब, तिसनें जाल बिछाइ है, तामें फस्या हों सो निकस नहीं शकता; सो आशारूपी फांशीमें बंध्या हुआ कबहु उर्ध्वकों जाता हों, कबहु अधःपात होता हो; सो घटीयंत्रकी नांई मेरी गति है; जैसे इंद्रका धनुष्य मलिन मेघमें होता है, सो बडा अरु बहोत रंगसों भऱ्या होता है; परतु मध्यतें शून्य है, तैसे तृष्णा मलिन अंतःकरणमें होती है, सो बडी है, अरु गुणरूपी धागेतें रहित है; उपरतें देखनेमात्र सुंदर है; परंतु इससें कार्य सिद्ध कछु नहीं होता.

हे मुनीश्वर! तृष्णारूपी मेघ है; तिसतें दुःखरूपी बूंद निकसते हैं अरु तृष्णारूपी काली नागनी है; उसका स्पर्श तो कोमल है, परंतु विषकर पूर्ण है; तिसके डसेतें मृतक हो जाता है, अरु तृष्णारूपी बादर है, सो आत्मरूपी सूर्यके आगे आवरण करता है. जब

ज्ञानरूपी पवन निकसै तब तृष्णारूपी बादरका नाश होवै; अरु आत्मपदका साक्षात्कार होवै, अरु ज्ञान रूपी कमलकों संकोच करनेहारी तृष्णारूपी निशा है; अरु तृष्णारूपी महाभयानक काली रात्रि है. जिस कर बडे धैर्यवान भी भयभीत होते हैं, अरु नयनवालेकों भी अंध कर डारती है; जब यह आवती है, तब वैराग्य अरु अभ्यासरूपी नेत्रकों अंध कर डारती है; अर्थ यह जो सत्य असत्यकों विचारनें नहीं देती.

हे मुनीश्वर! तृष्णारूपी डाकिनी है, सो संतोषादिक पुत्रकों मार डारती है. अरु तृष्णारूपी कंदरा है; तिसमें मोहरूपी उन्मत्त हस्ती गरजते हैं. अरु तृष्णारूपी समुद्र है, तिसमें आपदारूपी नदी आय प्रवेश करती है तातें सोई उपाय मुझकों कहो, जिसकर तृष्णारूपी दुःखतें छूटों.

हे मुनीश्वर! अग्निसों भी ऐसा दुःख नहीं होता अरु खड्गके प्रहारकर भी ऐसा दुःख नहीं होता; अरु इंद्रके वज्रकर भी ऐसा दुःख नहीं होता; जैसा दुःख तृष्णाकर होता है; सो तृष्णाके प्रहारसों घायल बडे दुःखकों पावता है, अरु तृष्णारूपी दीपक पर्या जलता है, तिसमें संतोषादि पतंगिये जर जाते हैं; जैसे जलमें मच्छ रहती है, सो जलमें कंकरी रेती आदि वेसेकों देख मांस जानकर वह मुखमें लेती है; तातें उसका अर्थ सिद्ध

कछु नहीं होता, तैसे तृष्णा भी जो कछु पदार्थ देखती है, तिसके पास उडती है, अरु तृप्त किसी करी नहीं होती. अरु तृष्णारूपी एक पक्षिणी है, सो कबहु कहुं उड जाती है; अरु स्थिर कबहु नहीं होती, तैसे तृष्णा भी कबहु किसी पदार्थकों, कबहु किसीकों ग्रहण करती है; परंतु स्थिर कबहु नहीं होती; अरु तृष्णारूपी वानर है, सो कबहु किसी वृक्षपर, कबहु किसीके उपर जाता है, स्थिर कबहु नहीं होता है; जो पदार्थ नहीं प्राप्त होता, तिसके निमित्त यत्न करता है, तैसे तृष्णाहु नानाप्रकारके पदार्थका ग्रहण करती है;अरु भोगकर तृप्त कदाचित् नहीं होती; जैसे घृतकी आहुतीकर अग्नि तृप्ति नहीं पावे तैसे जो पदार्थ प्राप्तियोग्य नहीं है, तिसके और भी तृष्णा दोरती है, शांतिकों नहीं पावती है.

हे मुनीश्वर! तृष्णारूपी उन्मत्त नदी है तिसमे जो वहाया पुरुष ताकों कहांका कहां ले जाती है. कबहु तो पहारकी वाञ्छमें ले जाय, कबहु दिशामें ले जाय परंतु इनकों ले फिरती है, तैसे तृष्णारूपी नदी है, सो मुझको ले फिरती है; अरु तृष्णारूपी जो नदी है, इसमे वासनारूपी अनेक तरंग उठते हैं, कदाचित् मिटते नहीं हैं; अरु तृष्णारूपी नटनी है अरु जगत्‌रूपी अखाडा तिसने लगाया है, तिसकों शिर उंचा कर देखती है, अरु

मूर्ख बडे प्रसन्न होते हैं; जैसे सूर्यके उदय हुए सूर्यमुखी कमल खिलके ऊंचा आता है, तैसे मूर्ख तृष्णाकों देखकर प्रसन्न होते हैं; तृष्णारूपी वृद्ध स्त्री है; जो पुरुष इसका त्याग करता है, तब वाके पाछे लगी फिरती है, कबहु इसका त्याग नहीं करती; अरु तृष्णारूपी डोरी है, तिससाथ जीवरूपी पशु बांधे हुए हैं, तिसकर भ्रमते फिरते हैं; अरु तृष्णा डुष्टनी है; जब शुभ गुणकों देखै, तब तिनकों मार डारती है; तिसके संयोगतें में दीन हो जाता हौं, जैसे पपैया मेघकों देखकर प्रसन्न होता है; अरु बूंद ग्रहण करने लगता है, औ मेघकों जब पवन ले जाता है, तब पपैया दीन हो जाता है, तैसे तृष्णा शुभ गुणका नाश करती है; तब मैं दीन हो जाता हौं.

हे मुनीश्वर! तृष्णानें मुझकों दूरतें दूर डाऱ्या है; जैसे सूके तृणकों पवन दूरतें दूर डारता है तैसे तृष्णारूपी पवननें मुझकों दूरतें दूर डाऱ्या है; आत्मपदतें दूर पर्या हौं. हे मुनीश्वर! जैसे भंवरा कमलके उपर जाता है, कबहु नीचे बैठता है; कबहु आसपास फिरता है; अरु स्थिर नहीं होता, तैसे तृष्णारूपी भंवरा संसाररूपी कमलके नीचे उपर फिरता है; कदाचित् ठहरता नहीं है, जैसे मोतीका बांस होता है; तिसतें अनेक मोती निकसते हैं, तैसे तृष्णारूपी बांसतें जगतरूपी अनेक मोती निकसते हैं, तिसकर लोभीका मन पूर्ण नहीं होता;

दुःखरूपी रत्नका तृष्णारूपी डब्बा है; तैसे अनेक दुःख रहते हैं. तातें सोइ उपाय कहो, जिसकर तृष्णा निवृत्त होवै.

हे मुनीश्वर ! यह वैराग्यसें निवृत्ति पाती है और किसी उपायकर निवृत्त नहीं होती है. जैसे अंधकारका प्रकाशकर नाश होता है, और किसी उपायकर नहीं होताः तैसे तृष्णाका नाश और उपायसों नहीं होता है; अरु तृष्णारूपी हल है सो गुणरूपी पृथ्वीकों खोद डारता है; अरु तृष्णारूपी वल्ली है; सो गुणरूपी रसकों पीती है; अरु तृष्णारूपी धूर है, सो अंतःकरणरूपी जलमें उछलके मलिन करती है.

हे मुनीश्वर ! नदी है सो वर्षाकालमें वढती है, फिर घट जाती है, तैसे जब इष्टभोगरूपी जल प्राप्त होता है, तब हर्षकर वढती है, जब भोगरूपी जल घट जाता है, तब सूकके छीन हो जाती है. हे मुनीश्वर! इस तृष्णाने मुझकों दीन किया है; जैसे सूके तृणकों पवन उडाता है; तैसे मुझको उडाती है, तातें सोइ तुम उपाय कहो जिसकर तृष्णाका नाश होवै, अरु आत्मपदकी प्राप्ति होवै, अरु दुःख नष्ट होवै, अरु आनंद होवै.

इति श्रीयोगवासिष्ठे वैराग्यप्रकरणे तृष्णागारुडीवर्णन नाम द्वादशः सर्गः ॥ १२ ॥

त्रयोदशः सर्गः १३.

अथ देहनैराश्यवर्णनं.



श्रीराम उवाच—हे मुनीश्वर ! यह जो अमंगलरूप शरीर जगतमें उत्पत्ति पाया है, सो बडा अभाग्यरूप है; सदा विकारवान, मांसमज्जाकर पूर्ण है, सदा अपवित्र है; इस करके मैं कछु अर्थ सिद्ध होता नहीं देखता; तातें तिस विकाररूप शरीरकी इच्छा मैं नहीं रखता.

यह शरीर न अज्ञ है, न तज्ज्ञ है; अर्थ यह जो न जड है न चैतन्य है; जैसे अग्निके संयोगकर लोहा अग्निवत् होता है; सो जलता भी है; परंतु आप नहीं जलता; तैसे यह देह न जड है, न चैतन्य है; जड इस कारणतें नहीं, जो इसतें कार्य भी होता है; अरु चैतन्य इस कारणतें नहीं, जो इसकों आपतें ज्ञान कछु नहीं होता; तातें मध्यम भावमें है; काहेतें जो चैतन्य आत्मा इसमें व्याप रहा है, सो लोहअग्निकी नांई जानत हौं, अरु आपतें ता अपवित्ररूप अस्थि, मांस, रुधिर, मूत्र, विष्ठा करी पूर्ण, अरु विकारवान, ऐसा जो देह है सो दुःखका स्थान है; अरु इष्टके पायतें हर्षवान होता है अरु अनिष्टके पायतें शोकवान होता

है; तातें ऐसे शरीरकी मुझको इच्छा नहीं. यह अज्ञानकर उपजता है.

हे मुनीश्वर! ऐसे अमंगलरूपी शरीरमें जो अहंपना स्फुरता है, सो दुःखका कारण है; यह संसारमें स्थित होकर नानाप्रकारके शब्द करता है; जैसे कोटडीमें बिल्ला बैठा हुआ नानाप्रकारका शब्द करता है, तैसे अहंकाररूपी बिलाडा देहमें रहा हुआ अहं अहं, करता है; चुप कदाचित् नहीं रहता है. हे मुनीश्वर! जो किसीके निमित्त शब्द होवे सो सुंदर है; अन्यथा शब्द व्यर्थ है; जैसे जयके निमित्त ढोलका शब्द सुंदर होता है; तैसे अहंकारके रहित जो पद है, सो शोभनीक है; और सब व्यर्थ है.

अरु शरीररूपी नौका भोगरूपी रेतीमें परी है, इसकों पार होना कठिन है; जब वैराग्यरूप जल बढे अरु प्रवाह होवें; अरु अभ्यासरूपी पतवारीका बल होवें; तब संसारके पाररूपी किनारेपें पहुचैं; अरु शरीररूपी बेडा है; अरु संसाररूपी समुद्र, औ तृष्णारूपी जलमें पऱ्या है; अरु बडा प्रवाह है; अरु भोगरूपी तिसमें मगर हें; सो शरीररूपी बेडाको पार लगने नहीं देता; जब शरीररूपी बेडाके साथ वैराग्यरूपी वायु लगै, अरु अभ्यासरूपी पतवारीका बल लगे, तब शरीररूपी बेडा पारिकों पावै. हे मुनीश्वर! जिन पुरुषनें ऐसे बेडेकों

उपायकर आपकों संसारसमुद्रतें पार किया है; सो सुखी भये हैं; अरु जिननें नहीं किया, सो परम आपदाकों प्राप्त होते हैं; सो इस बेडेकर उलटे डुबेइगे; जैसे बेडामें छिद्र होवै; औ वामेंतें जल प्रवेश कर आवै, तब वह डूब जाता है; अरु तिसमें जो मत्स्य हैं; सो खाइ जाते हैं; सो इहां शरीररूपी बेडेका तृष्णारूपी छिद्र है; तिसकरके इहां संसारसमुद्रमें डुब जाता है; अरु भोगरूपी मगर इसकों खाते हैं, अरु यह आश्चर्य है जो बेडा अपने निकट नहीं भासता है; अरु मनुष्य सो मूर्खता करके आपकों बेडा मानता है; अरु तृष्णारूपी छिद्र करके दुःख पावत है.

अरु शरीररूपी वृक्ष है; तामें भुजारूपी शाखा हैं; अरु अंगुरी इसके पत्र हैं; अरु जंघा इसके स्तंभ हैं; अरु मांसरूपी अंतरका भोग है, अरु वासना इसकी जड है; अरु सुख दुःख इसके फूल हैं; अरु तृष्णारूपी घुना है; सो शरीररूपी वृक्षकों खात रहता है; जब इसकों श्वेत फूल लगे हैं तब नाशका समय पाता है; कारण जो मृत्युके निकटवर्ती होता है; बहुरि शरीररूपी वृक्ष कैसा है ? जो भुजारूपी इसके टास हैं; अरु हस्तपाद इसके पत्र हैं; अरु गिटे इसका गुंछा है; अरु दांत फूल हैं; जंघा स्तंभ हैं; अरु कर्मजलकर बढ जाता है; जैसे वृक्षतें जल निकसता है; सो

चिकटा है; तैसे जल शरीरके द्वारा निकसता रहता है, अरु तृष्णारूपी विपतें पूर्ण सर्पिणी रहति है, अरु जो कामनाके लिये इस वृक्षका आश्रय लेता है; तब तृष्णारूपी सर्पिणी तिसकों डसती है; तिस विषसों वह मरी जाता है. हे मुनीश्वर! ऐसा जो अमंगलरूपी शरीर वृक्ष है, तिसकी इच्छा मुझकों नहीं है. यह परम दुःखका कारण है.

जबलग यह पुरुष अपने परिवारमें बंध्या हुआ है; तबलग मुक्ति नहीं होती; जब परिवारका त्याग करै तब मुक्ति होवै, देह, इंद्रिय, प्राण, मन, बुद्धि इसका परिवार है; इनमे जो अहंभाव है, वाका त्याग करै तब मुक्ति होवै, अन्यथा मुक्ति नहीं होती.

हे मुनीश्वर! जो श्रेष्ठ पुरुष हैं; सो पवित्रई स्थानमें रहते हैं; अपवित्रमें नहीं रहते; सो अपवित्र स्थान यह देह है; इसमें रहनेवाला भी अपवित्र है, अरु अस्थिरूपी इस घरमें लकडे हैं; वामें रुधिर, मूत्र, विष्ठाका कीच लगाया है; अरु मांसकी कहगील करी है; अरु अहंकाररूपी इसमें श्वपच रहता है; अरु तृष्णारूपी श्वपचनी इसकी स्त्री है, अरु काम, क्रोध, मोह, लोभ इसके बेटे हैं; आंत्र अरु विष्ठादिक करी पूर्ण भऱ्या हुआ है; ऐसा जो अपवित्र स्थान, अमंगलरूप जो शरीर, तिनका मै अंगीकार नहीं करता; यह शरीर

रहौ चाय मत रहौ; इसके साथ मेरे अब कछु प्रयो-
जन नहीं.

हे मुनीश्वर ! एक बडा घर है, तिसमें बडे पशु रहते हैं सो धूरकों उडावते हैं; उस गृहमें कोउ जाता है, तब सिंह मारने लगता है, अरु धूड भी उसके उपर गिरती है; सो शरीररूपी बडा गृह है, तिसमें इंद्रियरूपी पशु हैं; जब इस गृहमें बैठता है, तब बडी आपदाकों प्राप्त होता है; तात्पर्य यह जो इसमें अहंभाव करता है, तब इंद्रियरूपी पशु सो विषयरूप सिंहसों मारते हैं; अरु तृष्णारूपी धूड इसकों मलीन करती है. हे मुनीश्वर! ऐसे शरीरका मैं अंगीकार नहीं करता.

जिसमें सदा कलह पडेई रहते हैं; तिसमें ज्ञानरूपी संपदा प्रवेश नहीं होती; ऐसा जो शरीररूपी गृह है, तिसमें तृष्णारूपी चंडी स्त्री रहती है, सो इंद्रियरूपी द्वारसों देखती रहती है; सो सदा कल्पना करत रहती है; तिसकर शमदमादिरूप संपदाका प्रवेश नहीं होता; तिस घरमें एक शय्या है, जब उसके उपर विश्राम करता है, तब कछुक सुख पाता है; परंतु तृष्णाका जो परिवार है सो विश्राम करने नहीं देता; सो सुषुप्तिरूपी शय्या है; जब उसमें विश्राम करता है, तब कामक्रोधादिक रुदन करते हैं; अरु ए चंडी स्त्रीका जो परिवार, काम, क्रोध, लोभ, मोह, इच्छा है सो उठाई

देते हैं, विश्राम करने नहीं देते. हे मुनीश्वर ! ऐसा दुःखका मूल जो शरीररूपी गृह है, तिसकी इच्छा मैंने त्याग दीनी है; यह परम दुःख देनहारा है, इसकी इच्छा मुझकों नहीं.

हे मुनीश्वर ! शरीररूपी वृक्ष है, तिसमें तृष्णारूपी कौवानी आय स्थित भई है; सो जैसे कौवानी नीच पदार्थके पास उडती है; तैसे तृष्णारूपी कौवानी भोगरूपी मलिन पदार्थके पास उडती है; बहुरि तृष्णा बंदरीकी नांई शरीररूपी वृक्षको हिलाती है; वृक्षकों स्थिर होने देती नहीं. अरु जैसे उन्मत्त हस्ती कीचमें फस जाता है, अरु निकस नहीं शकता, अरु खेदवान होता है, तैसे अज्ञानरूपी मदकर उन्मत्त हुआ जीव शरीररूपी कीचमें फस्या है, सो निकस नहीं शकता है, पऱ्याई दुःख पावता है. ऐसे दुःख पावनेवाला शरीर है, तिसका मै अंगीकार नहीं करता.

हे मुनीश्वर ! यह शरीर अस्थि, मांस, रुधिरकरि पूर्ण है, सो अपवित्र है; जैसे हस्तिके कर्ण सदाई हलते हैं, तैसे इसकों मृत्यु परा हिलाता है, कछु कालका विलंब है, परंतु मृत्यु इसका ग्रास कर लेवैगा, तातें मैं इस शरीरका अंगीकार नहीं करता हौं.

यह शरीर कृतघ्न है; भोग भुगतता है; बडे ऐश्वर्यकों प्राप्त करता है; परंतु मृत्यु इनकी सखापन नहीं करता

है, जब जीव उसकों छांडकर परलोक जाता है; तब अकेला जाता है; औ शरीरकों छोड देता है, जीव इसके सुखनिमित्त अनेक यत्न करता है; परंतु संगमें सदा नहीं रहता; ऐसा जो कृतघ्न शरीर है, इसका मैंने मनसों त्याग किया है, सो यह दुःख देनहारा है.

हे मुनीश्वर ! और आश्चर्य देखो, जो याहिका भोग करता है, तिसकेसाथ जलता नहीं, जैसे धूरीकर मार्ग भासनेतें रही जाता है; तैसे यह जीव जब चलने लगता है; तब शरीरसाथ क्षोभवान होता अरु वासनारूप धूरसंयुक्त चलता है; परंतु दिखता नहीं जो कहां गया; जब परलोक जाता है, तब बडा कष्ट होता है; काहेतें जो शरीरकेसाथ स्पर्श किया है.

हे मुनीश्वर! यह शरीर क्षणभंग है, जैसे जलकी बूंद पत्रके उपर गिरती है; सो क्षणमात्र रहती है; तैसे शरीर भी क्षणभंग है; ऐसे शरीरमें आस्था करनी सो मूर्खता है, अरु ऐसे शरीरके उपर उपकार करना भी दुःखके निमित्त है, सुख कछु नहीं है; औ जो धनाढ्य हैं; सो शरीरसों बडे भोग भुगतते हैं, औ निर्धन थोडे भोग भुगते हैं; परंतु जरावस्था अरु मृत्यु दोनोंकों होते हैं; इसमें विशेपता कछु नहीं; शरीरका उपकार करना, औ भोग भुगतना, सो तृष्णा करके उलटा दुःखका कारण है, जैसे कोउ नागिनी घरमें रखके इसकों

दुध प्यावे; तोउ आखर उसकों काटके मारेगी; तैसें जीवनें तृष्णारूप नागनीसाथ सखाई करी है, सो मरेगा; क्यों जो नाशवंत है; इसके निमित्त जो भोग भुगतनेका यत्न करना सो मूर्खता है, जैसे पवनका वेग आता है, अरु जाता है, तैसे यह शरीर नाशवंत है; इससों प्रीति करनी, सो दुःखका कारण है; सब जीव इसकी आस्थामे बांधे हुए हैं; इसीका त्याग कोउ विरलानेंइ किया है; जैसें कोउ विरला मृग होता है, सो मरुस्थलके जलकी आस्था त्यागता है, और सब परे भमते हैं.

हे मुनीश्वर! बिजलीका अरु दीपकका प्रकाश भी आता जाता दिखता है; परंतु इस शरीरका आदि अंत नहीं दिखता है; जो कहांतें आता है; अरु कहां जाता है. जैसे समुद्रमें बुद्बुद उपजते हैं, अरु मिट जाते हैं, तिनकी आस्था करनेतें कछु लाभ नहीं; तैसे इस शरीरकी आस्था करनी योग्य नहीं; यह अत्यंत नाशरूप है, स्थिर कदाचित् नहीं होता है; जैसें बिजुरी स्थिर नहीं होती, तैसे शरीर भी स्थिर नहीं रहता; इसकी मैं आस्था नहीं करता; इसका अभिमान मैंनें त्याग्या है; जैसें कोउ सूके तृणकों त्याग देता है; तैसे मैंनें अहंममता त्यागी है.

हे मुनीश्वर! ऐसे शरीरकों पुष्ट करना, सो दुःखके

निमित्त है; यह शरीर किसी अर्थ आवनें योग्य नहीं; जलावने योग्य है; जैसे लकडी जलाए बिन और काममें नहीं आती है; तैसे यह शरीर भी जड अरु गुंगा जलावनेके अर्थ है. हे मुनीश्वर ! जिन पुरुषनें काष्ठरूपी शरीरकों ज्ञानाग्निकर जलाया है; तिनका परम अर्थ सिद्ध भया है, अरु जिननें नहीं जलाया सो परम दुःख पाया है.

हे मुनीश्वर ! न मैं शरीर हों, न मेरा शरीर है, न इसका मै हों, न यह मेरा है, अब मुझकों कामना कोउ नहीं है, मैं निराशी पुरुष हों, अरु शरीरसाथ मुझकों प्रयोजन कछु नहीं है; तातें तुम सोई उपाय कहो; जिसकर मैं परम पदकी प्राप्ति पाऊं.

हे मुनीश्वर ! जिस पुरुषनें शरीरका अभिमान त्याग्या है, सो परमानंदरूप है; औ जिसकों देहका अभिमान है, सो परम दुःखी है; जेते कछु दुःख है; सो शरीरके संयोगकरी होते हैं. मान, अपमान, जरा, मृत्यु, दंभ, भ्रांति, मोह, शोक, आदि सर्व विकार देहके संयोगकर होते हैं; जिसकों देहमें अभिमान है, तिसकों धिःकार है; औ सब आपदा भी तिसकों प्राप्त होती है; जैसे समुद्रमें नदी आय प्रवेश करती है; तैसे देहाभिमानमें सर्व आपदा आय प्रवेश करती है; जिसकों देहका अभिमान नहीं, सो पुरुषनमें उत्तम है, अरु वंदना करने योग्य है; ऐसेकों

मेरा नमस्कार है, अरु सर्व संपदा भी तिसकों प्राप्त होती है; जैसे मानस सरोवरमें सब हंस आय रहते हैं; तैसे जहां देहाभिमान नहीं रहा, तहां सर्व संपदा आय रहती है.

हे मुनीश्वर ! जैसे अपनी छायामें बालक बैताल कल्पता है; अरु तिसकर भय पाता है; जब इसकों विचारकी प्राप्ति होती है, तब बैतालका अभाव हो जाता है, तैसे अज्ञानकर मुझकों अहंकाररूपी पिशाचनें शरीरमें दृढ आस्था बताई है, तातें सोई उपाय कहो ! जिसकर अहंकाररूपी पिशाचका नाश होवै; अरु आस्थारूपी फांसी टूटै.

हे मुनीश्वर ! प्रथम जो मुझकों अज्ञानकर संयोग था सो अहंकाररूपी पिशाचका था, तिसतें अनंतर शरीरमें आस्था उपजी है, जैसे बीजतें प्रथम अंकुर होता है; फिर अंकुरतें वृक्ष होता है; तैसे अहंकारतें शरीरकी आस्था होती है. हे मुनीश्वर! इस अहंकाररूपी पिशाचने सब जीवनकों दीन किये हैं, जैसे बालकको छायामें बैताल भासता है, अरु दीनताकों प्राप्त होता है, तैसे अहंकाररूपी पिशाचनें मुझकों दीन किया है, सो अहंकाररूपी पिशाच अविचारतें सिद्ध है, अरु विचार कियेतें अभावकों प्राप्त होता है; जैसे प्रकाशकर अंधकार नाश हो जाता है; तैसे विचार कियेतें अहंकार नाश हो जाता है.

हे मुनीश्वर! जो शरीरमें आस्था रखी है, सो शरीर जलके प्रवाहकी नांई स्थिर नहीं होता; ऐसा चल है; जैसे बिजुरीका चमका स्थिर नहीं होता अरु गंधर्वनगरकी आस्था व्यर्थ है तैसे शरीरकी आस्था करनी व्यर्थ है. हे मुनीश्वर! ऐसे शरीरकी आस्था करके अहंकार करते हैं; अरु जगत्के पदार्थनिमित्त यत्न करते हैं, सो महा मूर्ख हैं. जैसे स्वप्न मिथ्या है, तैसे यह जगत् मिथ्या है, तिसकों सत्य जानकर जो इसका यत्न करता है, सो अपने बंधनके निमित्त करता है, जैसे धुरान गुफा बनाती है, सो अपने बंधनके निमित्त है, अरु पतंग दीपककी इच्छा करता है; सो अपने नाशके निमित्त है, तैसे अज्ञानी जो अपने देहका अभिमान कर भोगकी इच्छा करता है; सो अपने नाशनिमित्त है.

हे मुनीश्वर! मैं तो इस शरीरका अंगीकार नहीं करता; काहेतें इस शरीरका अभिमान परम दुःख देनहारा है; जिसकों देह अभिमान नहीं रहा, तिसकों भोगकी इच्छा भी न रहेगी, तातें मैं निराश हों, अरु परम पदकी इच्छा है; जिसके पायेतें बहुरि संसारसमुद्रकी प्राप्ति न होवै.

इति श्रीयोगवासिष्ठे वैराग्यप्रकरणे देहनैराश्यवर्णनं नाम त्रयोदशःसर्गः ॥ १३ ॥

चतुर्दशः सर्गः १४.

अथ बाल्यावस्थावर्णन

राम उवाच—हे मुनीश्वर! यह संसारसमुद्रमें जो जन्म पाया है; तामें बालक अवस्था इसकों प्राप्त भई है; सो भी परम दुःखका मूल है; तिसमें परम दीन हो जाता है; अरु जेते अवगुण इसमें आय प्रवेश करते हैं, सो कहत हों; अशक्तता, मूर्खता, इच्छा, चपलता, दीनता अरु दुःख, संताप, एते विकार इसकों आय प्राप्त होते हैं; यह बाल्यावस्था महाविकारवान है; अरु बालक पदार्थकी और धावता है; एक वस्तुका ग्रहण कर दूसरीकों चाहता है; स्थिर नहीं रहता है; फिर औरमें लग जाता है; जैसे वानर ठहरके नहीं बैठता, अरु जो काउ की उपर क्रोध करता है, तब अंतरते पऱ्या जलता है; अरु बडी बडी इच्छा करता है, तिसकी प्राप्ति नहीं होती; सदा तृष्णामें रहता है; अरु क्षणमें भयभीत हो जाता है; शांतिको प्राप्त नहीं होता; फिर महादिन हो जाता है; जैसे कदली बनका हस्ती सांखलसों बांध्या हुआ दीन हो जाता है, तैसे यह चैतन्य पुरुष बालक अवस्थाकर दीन हो जाता है; जो कछु इच्छा करता है, सो विचारविना है; तिसकर दुःख पाता है; अरु मूढ युंग अवस्था है तिसकर कछु सिद्धि नहीं होती; कोउ पदा-

र्थकी प्राप्ति होती है; तिसमें क्षणमात्र सुखी रहता है; बहुरि तपने लगता है, जैसे तपती पृथ्वीपर जल डारिये, तब एक क्षण शीतल होती है; फिर उसी प्रकारसों त-पती है; तैसे उह भी तपता रहता है. जैसे रात्रीके अंतमें सूर्यका उदय होता है, तिसकर उलूकादि कष्ट-वान होते हैं तैसे इस जीवकों स्वरूपके अज्ञानकर बा-ल्यावस्थामें कष्ट होता है.

हे मुनीश्वर! जो बालक अवस्थाकी संगति करता है, सो भी मूर्ख है; काहेतें जो यह विवेकरहित अवस्था है; अरु सदा अपवित्र है; औ सदा पदार्थकी ओर धा-वता है; ऐसी मूढ अरु दीन अवस्थाकी मुझकों इच्छा नहीं; जिस पदार्थकों देखता है तिसकी ओर धावता है; अरु क्षणक्षण अपमानकों पावता है, जैसे कूकर क्षणक्ष-णमें द्वारकी ओर धावता है, अरु अपमान पावता है, तैसे बालक अपमानकों प्राप्त होता है; अरु बालककों सदा माता अरु पिताका भय रहता है; बांधवका सदा भय रहता है, अरु आपतें बडे बालकका भी भय रहता है, अरु पशु पक्षीहुका भय रहता है. हे मुनीश्वर! ऐसी दुःखरूप अवस्थाकी मुझकों इच्छा नहीं; जैसे स्त्रीके नयन चंचल है, अरु नदीका प्रवाह चंचल है, इसते भी मन अरु बालक चंचल है, ऐसे जानता हौं; अरु सब चंचलता बालकतें कनिष्ठ हैं; बालक सबतें चंचल है;

तैसा मन चंचल है, तैसा वालक भी चंचल है; म-
नका रूप वालक है.

हे मुनीश्वर! जैसे वेश्याका चित्त एक पुरुषमें नहीं
ठहरता, तैसे वालकका चित्त एक पदार्थमें नहीं ठहर-
ता; जो इस पदार्थकर मेरा नाश होवैगा, ऐसा वि-
चार भी तिसकों नहीं, अरु इसकर मेरा कल्याण
होवैगा सो विचार भी नहीं; ऐसेई पऱ्या चेष्टा कर-
ता है; अरु सदा दीन रहता है, अरु सुख, दुःख, इच्छा,
द्वेस करके तपायमान रहता है; जैसे ज्येष्ठ आषाढमें
पृथ्वी तपायमान होतीहै, तैसे वालक तपताई रहता
है, शांतिकों कदाचित् नहीं पावता.

अरु जव विद्या पढने लगता है, तव गुरुसों वडा भ-
यभीत होता है, जैसे कोउ यमकों देखके भय पावै,
औ गरुडकों देखके जैसे सर्प भय पावै; तैसे भयभीत
हो जाता है. जव शरीरकों कोउ कष्ट आय प्राप्त होता
है, तव वडे दुःखकों प्राप्त होता है, परंतु दुःखके निवार-
णमें समर्थ नहीं होता, अरु सहनकों भी समर्थ नहीं,
अंतरतें पऱ्या जलता है, अरु मुखते कछु वोल शकता
नहीं, जैसे वृक्ष कछु नहीं वोल शकता, अरु जैसे अ-
वर तिर्यक् योनी दुःख पावता है, अरु कही न शकत
है, अरु दुःखका निवारण नहीं करी शकता, न संहार
कर शकता, अंतरतें पऱ्या जलता है, तैसे वालक गुंग

मूढ हुआ दुःख पावता है. हे मुनीश्वर! ऐसी जो बालककी अवस्था, तिसकी जो स्तुति करता है, सो मूर्ख है.

यह तो परम दुःखरूप अवस्था है; इसमें विवेक विचार कछु नहीं; एक खानेकों पाता है, अरु रुदन करता है ऐसी अवगुणरूप अवस्था मुझकों नहीं सुहाती है; जैसे बिजुरी अरु जलके बुद्बुदे स्थिर नहीं रहते तैसे बालकहु स्थिर कदाचित् नहीं होता.

हे मुनीश्वर! यह महामूर्ख अवस्था है; कबहु कहता है. हे पिता! मुझकों बरफका टुकडा शुनी देहु, कबहु कहता है, मुझकों चंद्रमा उतार देहु, ए सब मूर्खताके वचन हैं; तातें ऐसी मूर्खावस्थाकों मै अंगीकार नहीं करता; जैसे दुःखका अनुभव बालककों होता है, सो हमारे स्वपनेमें भी नहीं आया; तात्पर्य यह, जो बाल्यावस्थामें वडा दुःख है; यह बाल्यावस्था अवगुणका भूषण है; सो अवगुणकर शोभती है, ऐसी नीच अवस्थाकों मैं अंगीकार नहीं करता; इसमें गुण कोउ भी नहीं है.

इति श्रीयोगवासिष्ठे वैराग्यप्रकरणे बाल्यावस्थावर्णनं नाम चतुर्दशः सर्गः ॥ १४ ॥

पंचदशः सर्गः १५.

अथ युवागारुडीवर्णन.

राम उवाच—हे मुनीश्वर ! दुःखरूप बाल्यावस्थाके अनंतर जो युवा अवस्था आती है, सो नीचेतें ऊंची चढती है; सो भी उत्तम गिनवेके निमित्त नहीं है, अधिक दुःखदायक है; जब युवा अवस्था आती है, तब कामरूपी पिशाच आय लगता है, सो कामरूपी पिशाच युवा अवस्थारूपी गडेलेमें आय स्थित होता है; चित्त फिराता है; अरु इच्छामें पसारता है; जैसे सूर्यके उदय हुए सूर्यमुखी कमल खिली आता है, अरु पंखुरीनकों पसरता हे, तैसे युवा अवस्थारूपी सूर्य उदय होता है, तब चित्तरूपी कमल इच्छारूपी पंखुरीनकों पसारता है, तब फुरती है; अरु कामरूपी पिशाच इसकों स्त्रीमें डार देता है; तहां पर्या दुःख पाता है, जैसे काउकों अग्निके कुंडमे डारी दिया होय अरु वह दुःख पावे तैसे कामके वश हुआ दुःखकों पाता है.

हे मुनीश्वर ! जो कछु विकार हैं, सो सब युवा अवस्थामें आयके प्राप्त हुए हैं, जैसे धनवानकों देखके निर्धन सब धनकी आशा करते हैं तैसे युवा अवस्थाकों देखकर सब दोप आय इकट्ठे होते हैं, अरु जो भोग-

कों सुखरूप जानकर भोगकी इच्छा करता है, सो परम दुःखका कारण है, जैसे मद्यका घट भऱ्या हुआ देखनेमात्र सुंदर लगता है, परंतु जब उसका पान करै, तब उन्मत्त होय जाय; तिस उन्मत्तताकर दीन हो जाता है, अरु निरादरकों पावता है, तैसे यह भोग देखनेमात्र सुंदर भासता है; परंतु जब इनकों भुगतता है, तब तृष्णाकर उन्मत्त हो जाता है; अरु पराधीन हो जाता है.

हे मुनीश्वर ! यह काम, क्रोध, लोभ, मोह, अहंकार, ये सब जो चोर हैं, सो युवारूपी रात्रकों देखकर लूंटते हैं, अरु आत्मज्ञानरूपी धनकों चोर ले जाते हैं; तिसकर यह दीन होता है; यह पुरुष आत्मानंदके वियोगकर दीन हुआ है. हे मुनीश्वर ! ऐसी जो दुःख देनहारी युवा अवस्था, तिसका मैं अंगीकार नहीं करता, अरु शांति जो है, सो चित्त स्थिर करनेके लिये है; सो चित्त युवा अवस्थामें विषयकी ओर धावता है, जैसे बाण लक्षकी ओर जाता है, तब उसकों विषयका संयोग होता है; सो विषयकी तृष्णा निवृत्त नहीं होती; अरु तृष्णाके मारे जन्मतें जन्मातररूप दुःखकों पावता है. हे मुनीश्वर ! ऐसी दुःखदायक युवा अवस्थाकी मुझकों इच्छा नहीं है.

हे मुनीश्वर! जेते कछु दुःख हैं, सो सब युवा अवस्थामें आयकर प्राप्त होते हैं. काम, क्रोध, लोभ, मोह, अहंकार, चपलता, इत्यादिक जे दुःख हैं, वे सब युवा

अवस्थामें स्थिर होते हैं, जैसे प्रलयकालमें सव रोग आय स्थिर होते है, तैसे युवावस्थामें सब उपद्रव आय मिलते हैं, और क्षणभंग हैं, जैसे विजुरीका चमका होयके मिट जाता है; जैसे समुद्रमे तरंग होते है, अरु मिट जाते हैं, तैसे युवा अवस्था होयके मिट जाती है, जैसे स्वप्नमे कोइ स्त्री विकारकर छल जाती है, तैसे अज्ञानकर युवा अवस्था छल जाती है.

हे मुनीश्वर! युवा अवस्था जीवकी परम शत्रु है, जो पुरुप इस शत्रुके शस्त्रतें वचे है, सो धन्य है! इसके शस्त्र काम, क्रोध हैं जो इसतें छुब्या है, सो वज्रके प्रहारकर भी छेद्या न जावेगा, जो इसकर वांध्या हुआ है, सो पशु है.

हे मुनीश्वर! युवा अवस्था देखनेमें तौ सुंदर है; परंतु अंतरतें तृष्णा करके जर्जरीत है; जैसे वृक्ष देखनेमें तौ सुंदर होय, अरु अंतरतें घुना लग्या हुआ है; तैसे युवावस्था जो भोगके निमित्त यत्न करती हैं; सो भोग आपातरमणीय है; कारण यह जो जवलग इंद्रिय अरु विपयका संयोग है; तवलग अविचारित भला लगता है; अरु जव वियोग हुआ तव दुःख होता है; तातें भोग करके मूर्ख प्रसन्न होते हैं; अरु उन्मत्त होते हैं, तिसको शांति नहीं होती, अरु अंतरतें सदा तृष्णा रहती है; स्त्रीमे चित्तकी आसक्ति रहती है, जब इष्ट वनिताका

वियोग होता है, तब तिसके स्मरन करके जलता है, जैसे वनका वृक्ष अग्नि करके जलता है, तैसे युवावस्थामें इष्ट वियोग करके जीव जलता है; जैसे उन्मत्त हस्ती सांकल करके बंधन पाता है, तब स्थिर होता है; कहुं जाय नहीं शकता; तैसे कामरूपी हस्ती है, तिसकों सांकलरूप युवा अवस्था बंधन करती है, अरु युवावस्थारूपी नदी है, तिसमें इच्छारूपी तरंग उठते हैं; सो कदाचित् शांतीकों नहीं पाता है.

हे मुनीश्वर ! यह युवावस्था बडी दुष्ट है; कोउ बडा बुद्धिवान् होवै; अरु सदा निर्मल प्रसन्न होवै; एते गुण करके संपन्न होवै; तिसकी बुद्धिकों भी युवावस्था मलीन कर डारती है; जैसे निर्मल जलकी बडी नदी होवै, अरु जब वर्षाकाल आवै, तब मलीन होय जावै; तैसे युवावस्थामें बुद्धि मलीन होय जाती है.

हे मुनीश्वर ! शरीररूपी वृक्ष है, तिसमें युवावस्थारूपी वल्ली प्रगट होती है; सो पुष्ट होती है, तब चित्तरूपी भंवरा आय बैठता है; सो तृष्णारूपी तिसकी सुगंध करके उन्मत्त होता है; अरु सब विचार भूल जाता है. जैसे जब प्रबल पवन चलता है, तब सूके पत्रकों उडाय ले जाता है; अरु रहने नहीं देता, तैसे युवावस्था आवती है, तब वैराग्य, संतोषादिक गुणका अभाव करती है; अरु दुःखरूपी कमलका युवावस्था-

रूपी सूर्य है; युवावस्थाके उदयतें सब दुःख प्रफुलित होय आते हैं; तातें सब दुःखका मूल युवावस्था है; जैसे सूर्यके उदयतें सूर्यमुखी कमल खिल आते हैं, तैसे चित्तरूपी कमल, संसाररूपी पंखुरी, अरु सत्यतारूपी सुगंधकर खिली आता है; अरु तृष्णारूपी भोरा तिसपर आय बैठता है, अरु विषयकी सुगंध लेता है.

हे मुनीश्वर ! संसाररूपी रात्रि है, तिसमे युवावस्थारूपी तारागण प्रकाशते हैं; कारण यह जो शरीर युवावस्था करी सुशोभित होता है; अरु युवावस्था शरीरकों जर्जरीभाव करके हो आती है; जैसे धानके छोटे वृक्ष हरा तबलग रहै, जबलग उसको फूल नहीं आया; जब फूल आता है, तब सूकनेको लगता है; अरु अन्नके कण परिपक्क होते हैं; तब अन्नके छोटे वृक्ष जर्जरीभावको पावते हैं, उसकी हरियावल नहीं रह शकती, तैसे जबलग युवानी नहीं आई, तबलग शरीर सुंदर कोमल रहता है, जब युवानी आई तब शरीर क्रूर हो जाता है, फेर परिपक्क होकर क्षीण हो जाता है अरु वृद्ध होता है, तातें.

हे मुनीश्वर ! ऐसी दुःखकी मूलरूप युवा अवस्था है, तिसकी मुझकों इच्छा नहीं, जैसे समुद्र बडे जलकर पूर्ण है, तरंगको पसारता है; अरु उछलता है, तोउ

भी मर्यादाका त्याग नहीं करता; ईश्वरकी आज्ञा मर्यादामें रहनेकी है; अरु युवावस्था तो ऐसी है, जो शास्त्रकी मर्यादा, अरु लोककी मर्यादा मेटके ... है अरु तिनकों अपना विचार नहीं रहता; जैसे अंधकारमें पदार्थका ज्ञान नहीं होता, तैसे युवावस्थामें शुभ अशुभका ज्ञान नहीं होता, जिसकों विचार नहीं रह्या, तिसकों शांति कहांतें होवै ? सदा व्याधि तापमें जऱ्या रहता है. जैसे जलबिना मत्स्यकों शांति नहीं होती, तैसे विचारबिना पुरुष सदा जलता रहता है.

जब युवावस्थारूप रात्रि आती है, तब काम पिशाच आयके गरजता है· तिसकर इसकों यही संकल्प उठते हें; जो कोउ कामी पुरुष आवै, तिसकेसाथ मैं यही चर्चा करौं. हे मित्र! यह कैसी सुंदर है ? अरु कैसे उसके कटाक्ष हैं ? सो किस प्रकार मोकों प्राप्त होय ? हे मुनीश्वर! ऐसी इच्छासाथ वह सदा जलताई रहता है. जैसे मरुस्थलकी नदीकों देख मृग दौरता है; अरु जलकी अप्राप्तिकर जलता है, तैसे कामी पुरुष विषयकी वासना करके जलता है; अरु शांति नहीं पावता है;

हे मुनिश्वर! मनुष्य जन्म उत्तम है; परंतु जिनके अभाग्य हैं, तिनकों विषयतें आत्मपदकी प्राप्ति नहीं होती; जैसे चिंतामणि कोईको प्राप्त होवे, सो तिसका निरादर करे औ उनकों जानै नहीं, औ डारी देवै; तैसे जो

पुरुष मनुष्यशरीर पायकर आत्मपद नहीं पाया, सो वडा अभागी है, अरु मूर्खता करके अपने जीवनेकों व्यर्थ खोय डारता है, अरु युवा अवस्थामें परम दुःखका क्षेत्र अपने निमित्त होता है; अरु जेते विकार युवावस्थामें हैं, सो सब आयके इनको प्राप्त होते हैं; मान, मोह, मद इत्यादि विकार करके पुरुषार्थका नाश करता है. हे मुनीश्वर! ऐसे युवावस्था वडे विकारको प्राप्त करती है; जैसे नदी वायुसों अनेक तरंग पसारती है, तैसे युवावस्था चित्तके अनेक कामकों उठावती है; जैसें पक्षी पक्षकर वहुत उडता है; जैसे सिह भुजाके वलसों पशुको मारनेकों दौरता है, तैसे चित्त युवावस्थाकर विक्षेपकी और धावता है.

हे मुनीश्वर! समुद्रका तरना कठिन है, काहेतें जो तामे जल अथाग है, अरु विस्तार भी वडा है; अरु तिसमें मत्स्य, कच्छ, मगर वडे देहधारी रहते हैं; ऐसा दुस्तर समुद्रका तरना सो में सुगम मानता हों, परंतु युवावस्थाका तरना महाकठिन है; कारण यह जो युवावस्थामें निर्दोष रहना कठिन है, ऐसी संकटवाली जो युवावस्था है, तिसमें चलायमान नहीं होते सो पुरुष धन्य हैं! अरु वदना करने योग्य हैं हे मुनीश्वर! यह युवावस्था चित्तको मलीन कर डारती है, जैसे जलकी वावरी है, तिसके निकट राख कंटे रहे होय, सो पवन चलनेतें

सब आय बावरीमें गिरैं; तैसे पवनरूपी युवावस्था दो षरूपी धूर कांटेनकों चित्तरूपी बावरीमें डारके मलीन कर देती है. ऐसे अवगुण करके पूर्ण जो युवावस्था तिसकी इच्छा मुझकों नहीं है.

युवावस्था ! मेरेपर यही कृपा करनी, जो तेरा दर्शन नहीं होवै, तेरा आवना मैं दुःखका कारण मानता हौं. जैसे पुत्रके मरनेका संकट पिता शोप नहीं शकता, अरु सुखका निमित्त नहीं देखता; तैसा तेरा आवना मैं सुखका निमित्त नहीं देखता, तातें मुझपर दया करनी जो अपना दर्शन न होवै !

हे मुनीश्वर ! युवावस्थाका तरना महाकठिन है जो कोउ यौवन होवै सो नम्रतासंयुक्त होवै; औ शास्त्रके गुण, वैराग्य, विचार, संतोष, शांति इनकर संपन्न होवै सो दुर्लभ है; जेसे आकाशमें बन होना आश्चर्य है; तैसे युवावस्थामें वैराग्य, विचार, शांति, संतोष पावना ए बडा आश्चर्य है; तातें मुझकों सोइ उपाय कहौ जिसकर युवावस्थाके दुःखकी मुक्ति होय जाय; अरु आत्मपदकी प्राप्ति होय.

इति श्रीयोगवासिष्ठे वैराग्यप्रकरणे युवागारुडी वर्णन नाम पंचदशः सर्गः ॥ १५ ॥

षोडशः सर्गः १६.

अथ स्त्रीदुराशावर्णनं



श्रीराम उवाच–हे मुनीश्वर! जिस कामविलासके निमित्त स्त्रीकी वांछा करता है, सो स्त्री अस्थि, मास, रुधिर, मूत्र विष्ठाकरि पूर्ण है, इसकी पूतरी बनी हुई है; जैसे यंत्रकी बनी पूतरी होती है, सो तागेसों कर अनेक चेष्टा करती है; तैसे यह अस्थिमांसादिककी पूतरीमें कछु और नहीं है; जो विचार कर नहीं देखता, तिसकों रमणीय दिखती है; जैसे पर्वतके शिखर दूरते सुंदर, अरु गंगमालासहित भासते हैं, अरु निकटते असार हैं, बडे पथ्थरई दिखते हैं; तैसे स्त्री, वस्त्र अरु भूपणनसोंकरि सुंदर भासती है, अरु जो अंगकों भिन्न भिन्न विचारकर देखो तो सार कछु नहीं है; जैसे नागनीके अंग बहुत कोमल होते हैं, परतु उसका स्पर्श करें तो काटके मार डारती है; तैसे जो कोई स्त्रीकों स्पर्श करते हैं, तिनकों नाश कर डारती है, जैसे विपकी वेली देखनेमात्र सुंदर लगती है, परंतु स्पर्श कियेतें मार डारती है. जैसे हस्तिको जंजीरकर बांधो तव जिस द्वारपें रहता है तहांइ स्थिर रहता हे, तैसे अज्ञानीका जो चित्तरूपी हस्ती है, सो कामरूपी जंजीरकर-वंध्या हुआ स्त्रीरूपी एक स्थानमें स्थिर रहता है, उहांते कहुं जाय नहीं शकता, औ

जब हस्तिकों महावत अंकुशका प्रहार करता है, तब वंधनकों तोरके निकस जाता है, तैसे यह चित्तरूपी मूर्ख हस्ति है, सो महावतरूपी गुरुके उपदेशरूपी अंकुशका वारंवार प्रहार करता है, तब सो भी निर्वंध होय जाता है.

हे मुनीश्वर! कामी पुरुष जो स्त्रीकी वांछा करता है, सो अपने नाशके निमित्त करता है; जैसे कदलीवनका हस्ती कागदकी हस्तिनी देखकर छल पायके वंधनमें आता है, तातें परमदुःख पाता है; तैसे परमदुःखका मूल स्त्रीका संग है. हे मुनीश्वर! जैसे वनके दाहकी अग्नि सवनकों जलावती है, तैसे स्त्रीरूपी अग्नि तिसतें अधिक है; काहेतें जो उस अग्निके स्पर्श कियेतें तप्त होते हैं; औ स्त्रीरूपी अग्नि तौ स्मरणमात्रतें जलाती है; औ जो सुख रमणीय दिखता है, सो आपातरमणीय है, जब स्त्रीके सुखका वियोग होता है, तब मुरदेकी नांई हो जाता है; तिस कालमें भी शव जैसा हो जाता है.

हे मुनीश्वर! यह तो अस्थि, मांस, रुधिरका पिंजरा है, सो अग्निमें भस्म हो जायगा; अथवा पशुपक्षीकों खानेका आहार होयगा; जिनकों देखकर पुरुष प्रसन्न होता है, अरु प्राण आकाशमें लीन हो जाते हैं; तातें इस स्त्रीकी इच्छा करनी सो मूर्खता है; जैसे अग्निकी ज्वालाके उपर श्यामता है. तैसे स्त्रीके शीश उपर श्याम

केश है; जैसे अग्निके स्पर्श कियेतें जलता है; तैसे स्त्रीके स्पर्श कियेतें पुरुष जलता है; तातें जलना दोनोमें तुल्य है. हे मुनीश्वर! इसकों नाश करनहारी स्त्रीरूपी अग्नि है; जो स्त्रीकी इच्छा करते हैं; सो महामूर्ख अज्ञानी हैं; सो अपने नाशके निमित्तई इच्छा करते हैं; जैसे पतंग अपने नाशके निमित्त दीपककी इच्छा करते हैं; तैसे कामी पुरुष अपने नाशके निमित्त स्त्रीकी इच्छा करता है.

हे मुनीश्वर! स्त्रीरूपी विषकी वल्ली है अरु हस्त पावके अग्र तिसके पत्र हैं; अरु भुजा डारी हैं; औ अस्थि रूप गुंछे हैं; नेत्रादिक इंद्रिय तिसके फूल हैं, अरु कामी पुरुषरूपी भौंरे आय वैठते हैं, अरु कामरूपी धीवरनें स्त्रीरूपी जाल पसारी है, तिसपर कामी पुरुषरूपी पक्षी आय फसते हैं. कामरूपी धीवर तिनकों फसायकर परम कष्ट प्राप्त करता है. ऐसे दुःखके देनहारी स्त्रीकी जो वांछा करत है, सो महामूर्ख है.

हे मुनीश्वर! स्त्रीरूपी सर्पिणी है; जब तिसका फूत्कारा निकसता है, तब तिसके निकट कमल फूल सब जल जाते हैं; ऐसी स्त्रीरूपी सर्पिणी है, तिसका इच्छारूप जो जो फूत्कारा निकसता है तब वैराग्यरूपी कमल जर जाते हैं, अरु जब सर्पिणी डसती है, तब

विप चढता है, औ स्त्रीरूपी सर्पिणीकी चितौंनी करी तब अंतरतें आपई विप चढ जाता है.

हे मुनीश्वर! जैसे व्याध छलकर मच्छीकों फसावता है; तैसे कामी पुरुप मच्छीवत् सुंदर स्त्रीरूपी जाल देखके फसता है; औ स्नेहरूपी तागेसों कामी पुरुप वंधन पाय खेंचाया चला जाता है; फिर तृष्णारूपी छुरीसों काम मार डारता है. हे मुनीश्वर! ऐसे दुःखके देनहारी स्त्रीकी मुझकों इच्छा नहीं; अरु कामरूपी पारधी है, तिसनें रागरूपी इंद्रियकी जाल विछायी है, कामी पुरुपरूपी मृगकों आसक्त कर डारता है; अरु स्त्रीके स्नेहरूपी डोरी है, तिसकर कामी पुरुपरूप वैल वंध्या है, अरु स्त्रीका मुखरूपी जो चंद्रमा है, तिसकों देखकर कामी पुरुपरूपी कमलनी खीली आती है, जैसे चंद्रमुखी कमल चंद्रमाकों देखकर प्रसन्न होते हैं, औ सूर्यमुखी नहीं होते, तैसे यह कामी पुरुप भोगहुकर प्रसन्न होते हैं अरु ज्ञानवान् प्रसन्न नहीं होते हैं. जैसे नकुल सर्पकों विलमेंते निकासके मारता है; तैसे कामी पुरुपको स्त्री, आत्मानंदमेंतें निकालके मार डारती है, जब स्त्रीके निकट जाता है, तब उसकों भस्म कर डारती है, जैसे सूके तृण अरु घृतकों अग्नि भस्म कर डारता है, तैसे कामी पुरुषकों स्त्रीरूपी नागनी भस्म कर डारती है.

हे मुनीश्वर! स्त्रीरूपी जो रात्रि है, तिसका स्नेहरूपी अंधकार है, तिसमें कामक्रोधादिक उलूक अरु पिशाच हैं. हे मुनीश्वर! जो स्त्रीरूपी खड्गके प्रहारतें युवारूपी संग्राममेंतें बच्या है; सो पुरुष धन्य है। तिसको मेरा नमस्कार है; स्त्रीका संयोग परम दुःखका कारण है, तातें मुझकों इसकी इच्छा नहीं. हे मुनीश्वर! जो रोग होता है, तिसके अनुसार औषध करता है, तब रोग निवृत्त होता है; अरु कोउ कुपथ्य दिये, तब वाका प्रलय होता है, रोग बढ जाता है; तातें मेरे रोगके अनुसार औषध करो.

सो मेरा रोग सुनियें, जरा अरु मृत्यु मुझकों बडा रोग है; तिसके नाशका औषध मुझकों दीजियें; औ स्त्री आदिक जो भोग हैं, सो सब इस रोगकी वृद्धि करते हैं; जैसे अग्निमें घृत डारिये, तब बढ जाता है, तैसे भोगसों जरा मृत्यु आदि रोग सो बढते हैं; तातें इस रोगकी निवृत्तिका औषध करो, नहीं तौ सबका त्याग कर बनमे जाय रहुंगा.

हे मुनीश्वर! जिसकों स्त्री है तिसको भोगकी इच्छा भी होती है, औ जिसको स्त्री नहीं तिसकों स्त्रीकी इच्छा भी नहीं. जिसने स्त्रीका त्याग किया है, तिसनें संसारका भी त्याग किया है, सोई सुखी है; संसारका बीज स्त्री है, तातें मुझकों स्त्रीकी इच्छा नहीं, मु-

झकों सोई औषध दीजें, जिसतें जरा मृत्यु आदि रोगकी निवृत्ति होई.

इति श्रीयोगवासिष्ठे वैराग्यप्रकरणे स्त्रीदुराशावर्णनं नाम षोडशः सर्गः ॥ १६ ॥

सप्तदशः सर्गः १७.

अथ जराऽवस्थावर्णनं



श्रीराम उवाच—हे मुनीश्वर! बालक अवस्था तो महाजड है, अरु अशक्त है औ जब युवावस्था आती है, तब बाल्यावस्थाकों ग्रहण कर लेती है; तिसके अनंतर वृद्धावस्था आती है, तब शरीर जर्जरीभूत हो जाता है; अरु बुद्धि क्षीण हो जाती है; बहुरि मृत्युकों पावता है. हे मुनीश्वर! इस प्रकार अज्ञानीका जीवना व्यर्थ है, कछु अर्थकी सिद्धि नहीं है. जैसे नदीके तटपर वृक्ष होते हैं, सो जलके प्रवाहकर जर्जरीभूत हो जाते हैं; तैसे वृद्धावस्थामें शरीर जर्जरीभूत हो जाता है, जैसे पवनसों पत्र उड जाता है, तैसे वृद्धावस्थामें शरीर नाश पाता है, जेते कछु रोग हैं सो सब वृद्धावस्थामें आय प्राप्त होते हैं, अरु शरीर कृश होय जाता है, अरु स्त्रीपुत्रादिक सब वृद्धका त्याग कर देते हैं; जैसे पके फलकों वृक्ष त्याग देता है, तैसे वृद्धकों कुटुंब

त्याग देता है, अरु देख हसते हैं; जैसे बावरेकों देखके हसके बोलते हैं, जो इसकी बुद्धि सब जात रही, जैसे कमल फूलनके उपर बरफ पडता है, अरु कमल जर्जरीभूत हो जाता है, तैसे जरा अवस्थामें पुरुष जर्जरीभावकों प्राप्त होता है, अरु शरीर कुबरा हो जाता है; केश श्वेत हो जाते हैं, शक्ति क्षीण हो जाती है; जैसे चिरकालका बडा वृक्ष होता है, तिसमें घुना होता है; तैसे शक्ति कछु रहती नहीं.

हे मुनीश्वर ! औरहु सब कृति क्षीण हो जाती है, परंतु एक आसक्ति मात्र रहती है; जैसे बडे वृक्षपें उलूक आय रहते हैं; तैसे इसमें क्रोधशक्ति आय रहती है औ शक्ति सब क्षीण हो जाती है. हे मुनीश्वर ! जरा अवस्था दुःखका घर है; जब जरा अवस्था आती है, तब सब दुःख इकट्ठे होते है, तिनकर महादीन हो जाते हैं; अरु युवावस्थाका जो कामका बल रहता है, सो जरामें क्षीण हो जाता है अरु इंद्रियकी आसक्ति घट जाती है, तिसतें चपलताका अभाव हो जाता है. जैसे पिताके निर्धन हुवे पुत्र दीन हो जाता है, तैसे शरीर निर्बल हुवे इंद्रियांहु निर्बल हो जाती है; औ एक तृष्णा उन्मत्त हो बढ जाती है.

हे मुनीश्वर ! जब जरारूपी रात्रि आती है, तब खांसीरूपी स्यार आय शब्द करते हैं, अरु आधिव्या-

धिरूपी उल्लूक आय निवास करते हैं. हे मुनीश्वर! ऐसी जो नीच वृद्धावस्था है, तिसकी मुझकों इच्छा नहीं. यह देह जरा आयतें कूबरा होय जाता है; जैसे पक्के फलसोंकर वृक्ष झुक जाता है, तैसे जराके आयतें देह कूबरा हो जाता है; जो युवावस्थामें स्त्रीपुत्रादिक चाहते थे, अरु टहल करते थे, सो सब उसकों त्याग देते हैं; जैसे वृद्ध बैलकों बैलवाला त्याग देता है तैसे इसकों बंधु त्याग देते हैं; औ देखके हसते हैं, अरु अपमान करते हैं; तिनकों ऊंटकी नाई भासता है. हे मुनीश्वर! ऐसी जो नीच अवस्था है, ताकी मुझकों इच्छा नहीं; अब जो कछु कर्त्तव्य मुझकों कहौ सो मैं करौं.

इस शरीरकी तीनौं अवस्थामें कोउ सुखदाई नहीं

भी निकट आता है. जैसे संध्याके आये रात्रि तत्काल आय जाती है; औ जो संध्याके आये दिनकी इच्छा करते है, सो मूर्ख हैं, तैसे जराके आये जीवनेकी आशा रखनी महामूर्खता है. हे मुनीश्वर! जैसे बिल्ली चितौंनी करती है, चुहा आवे तौ पकर लेऊं; तैसे मृत्यु चितवत है, जो जरावस्था आवे तौं मैं इसका ग्रहण कर लेऊं, अरु जरावस्था मानो कालकी सखी है. रोगरूपी मशा लेकर शरीररूपी मासकों सूकाती है, तब काल जो इसका स्वामी है, सो आयकर भोजन कर लेता है; अरु शरीररूपी घर है तिसका स्वामी काल है; काल जब घरमें आवें, तब तिसके आगे तीन पटरानी आती हैं; पहिली अशक्तता, दूसरी अंगमें पीडा, तीसरी खांसी; सो शीघ्र श्वासकों चलावती है, अरु श्वेत केश होते हैं, सो चरमकी नाई झुलते हैं; ऐसी जो कालकी सहेली है सो प्रथमही आई प्रवेश करती है; अरु जरारूपी कहगीलसों शरीरकों बनावती है, तब जो वाका स्वामी काल है, सो आय प्रवेश करता है.

हे मुनीश्वर! जो परम नीच अवस्था है, सो जराई है; सो जब आती है तब शरीर जर्जरीभूत कर देती है; कंपनेकों लगाती है; अरु शरीरकों निर्बल कर देती है; अरु क्रूर कर देती है; जैसे कमलपर बरफकी वर्षा होवे, अरु जर्जरीभूत होय जाय, तैसे शरीरकों जर्जरीभूत कर

डारती है; जैसे वनमें बाघन आयके शब्द करती है अरु मृगका नाश करती है, तैसे खांसीरूपी बाघ आय मृगरूपी बलका नाश करती है.

हे मुनीश्वर! जब जरा आवत है, तब मृत्यु प्रसन्न होता है; जैसे चंद्रमाके उदयतें कमलनी खिल आती है तैसे मृत्यु प्रसन्न होता है, अरु यह जरा अवस्था बडी दुष्ट है; बडे बडे योद्धे हुए हैं; तिनकों भी दीन कर दिये हैं; यद्यपि बडे शूरमेंनें संग्राममें शत्रुकों जीते हैं; तिनों कों भी जरानें जीत लिये हैं; अरु बडे पर्वतके चूर्ण कर डारे हैं तिनकों भी जरा पिशाचनीनें महादीन कर दिये हैं; यह जरारूपी जो राक्षसी है, तिसनें सबकों दीन कर दिये हैं, सो सबकों जीतनेवारी है.

हे मुनीश्वर! यह जरा शरीरकों अग्निकी नांई लगती है; जैसे अग्नि वृक्षकों लगता है, अरु धूम निकसता है तैसे शरीररूपी वृक्षमे जरारूपी अग्नि लगके तृष्णारूपी धूवे निकसते हैं; जैसे डिब्बेमें बडे रत्न रहते हैं, तैसे जरारूपी डिब्बेमें दुःखरूपी अनेक रत्न हैं; अरु जरारूपी वसंत ऋतु है, तिस करके शरीररूपी वृक्ष दुःखरूपी रस करके पूर्ण होता है, जैसे हस्ती सांकलसों बंध्या हुआ दीन हो जाता है, तैसे जरारूपी सांकल करके बंध्या पुरुष दीन हो जाता; हो अरु अंग सब शिथिल हो जाता है; बल क्षीण हो जाता है, अरु इंद्रियां भी निर्बल हो

जाती हैं; अरु शरीर जर्जरीभावकों प्राप्त होता है, परंतु तृष्णा नहीं घटती हैं; नित्य वढती चली जाती है; जैसे रात्रि आती तब सूर्यवंशी कमल सव मूंद जाते हैं; तव पिशाचनी आय विचरने लगती है, अरु प्रसन्न होती है; तैसे जरारूपी रात्रिके आयेते सव शक्तिरूप कमल मूंद जाते है, अरु तृष्णारूपी पिशाचनी प्रसन्न होती है.

हे मुनीश्वर! जैसे गंगाके तटपर वृक्ष रहते है; सो गंगाजलके वेगसों जर्जरीभूत हो जाते हैं, तैसे जो आयुरूपी प्रवाह चलता है, तिसके वेगकर शरीर जर्जरीभूत हो जाता है. जेसे मांसके टुकडेकों देख आकाशतें उडती चील नीचे आय ले जाती है; तैसे जरा अवस्थामें शरीररूप मांसकों काल ले जाता है. हे मुनीश्वर! यह तौ कालका ग्रास बन्या हुआ है, जैसे वृक्षकों हस्ती खाय जाता है, तैसे जरावाले शरीरकों काल देखके खाता है.

इति श्रीयोगवासिष्ठे वैराग्यप्रकरणे जरावस्थानिरूपणं नाम सप्तदशः सर्गः ॥ १७ ॥

अष्टादशः सर्गः १८.

अथ कालवृत्तांतवर्णनं

राम उवाच—हे मुनीश्वर! संसाररूपी गर्त्त है, तिसमें अज्ञानी गिर्या है, सो संसाररूपी गर्त्त अल्प है; अरु अज्ञानी तौ वडा हो गया है; संकल्पविकल्पकी

आधिक्यतातें वढे हैं; अरु जो ज्ञानवान पुरुष है सो संसारकों मिथ्या जानता है; फिर संसाररूपी जालमें फसता नहीं; अरु जो अज्ञानी पुरुष है; सो संसारकों सत्य जानकर संसारकी आस्थारूपी जालमें फसता है; अरु संसारके भोगकी वांछा करता है; सो ऐसा है, जैसे दर्पणमें प्रतिबिंव देखकर वालक पकरनेकी इच्छा करता है; तैसे अज्ञानी संसारकों सत्य जानकर जगत्के पदार्थकी वांछा करता है. यह मेरेकों होवे; यह मेरेकों नहीं होवे; अरु यह जो सुख है सो नाशात्मक है, अभिप्राय यह जो आवता है अरु जाता है; सो स्थिर नहीं रहता है; इसका काल ग्रास करता है; जैसे पके अनारकों चुहा खाय जाता है तैसे सव पदार्थकों काल खाता है.

हे मुनीश्वर! जेते कछु पदार्थ हैं, वे कालग्रसित हैं; वडे वडे वली सुमेरु जैसे गंभीर वलवाले पुरुषके ग्रास कालनें किये हैं; जैसे सर्पका नकुल भक्षण कर जाता है, तसे वडे वलीका ग्रास काल कर जाता है अरु जगत्रूपी एक गुल्लरका फल है, तिसमें जो मच्छा हैं, सो ब्रह्मादिक हैं, सो फलका जो वृक्ष है, तिनका जो वन है, सो ब्रह्मरूप है, तिस ब्रह्मरूप वनमें जेते कछु वन है, सो सव इसका आहार है, सवको भक्षण काल कर जाता है.

हे मुनीश्वर! यह काल वडा वलिष्ठ है; जो कछु

देखनेमें आता है, सो सब इसने ग्रास कर लिया है; तब अवरकी का कहनी है; औ हमारे जो बडे ब्रह्मादिक, तिनका भी काल ग्रास कर जाता है; जैसे मृगका ग्रास सिंह कर लेता है, औ काल किसी करके जान्या नहीं जाता; क्षण, घरि, प्रहर, दिन, मास, औ वर्षादिक कर जानिये सो काल है, औ कालकी मूर्त्ति प्रकट नहीं है, ऐसा अप्रगटरूप है, अरु किसीकी स्थिति होने नहीं देता; अरु एक वेली कालने पसारी है; तिसकी त्वचा रात्रि है, अरु फूल तिसका दिन है; औ जीवरूपी भौंरे तिसपर आय बैठते हैं

हे मुनीश्वर! जगत्‌रूपी गुलरका फूल है, तिसमें जीवरूपी मच्छर वहोत रहते हैं; तिस फूलका भक्षण काल कर जाता है. जैसे अनारका भक्षण तोता करता है, तैसे काल भक्षण करता है; अरु जगत्‌रूपी वृक्ष है, अरु जीवरूपी तिसके पत्र हैं, तिसका कालरूपी हस्ती भक्षण कर जाता है; अरु शुभ अशुभरूपी भेशानकों कालरूपी सिंह छेदछेदके खाता है.

हे मुनीश्वर! यह काल महाक्रूर है, सो किसीपर दया नहीं करता; सबका भोजन कर जाता है; जैसे मृग सब कमलकों खाय जाता है, तिसतें कोउ रहता नहीं है; परंतु एक कमल उसतें बचै है सो कमल कैसा है, शांति अरु मैत्री तिसके अंकूर हैं, अरु चेतनामात्र

प्रकाश है, इस कारणतें वह बचा है; सो कालरूपी मृग इसकों पोंहोंच नहीं शकता. इसमें प्राप्त हुआ काल भी लीन हो जाता है.

जेता कछु प्रपंच है; सो सब कालके मुखमें है; ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र, कुवेर आदिकर सब मूर्त्ति कालकी धरी हुई हैं; फिर तिनकों भी अंतर्धान कर देता है. हे मुनीश्वर! उत्पत्ति, स्थिति, अरु प्रलय सब कालतें होते हैं; अनेक वेर महाकल्पकाहु ग्रास कर लेता है; अरु अनेक वेर करेगा; अरु कालकों भोजन कियेतें तृप्ति कदाचित् नहीं होती अरु कदाचित् होनहारीहु नहीं; जैसे अग्नि घृतकी आहुतीसों तृप्त नहीं होता, तैसे जगत् अरु सब ब्रह्मांडका भोजन करतेहु काल तृप्त नहीं होता; अरु इसका ऐसा स्वभाव है जो इंद्रकों दरिद्री कर देता है; अरु दरिद्रीकों इंद्र कर देता है; औ सुमेरुकों राई बनाता है, अरु राईका सुमेरु करता है; सबतें बडे ऐश्वर्यवालेकों नीच कर डारता है; सबतें नीचकों उंच कर डारता है; अरु बूंदका समुद्र कर डारता है, अरु समुद्रका बूंद करता है, ऐसी शक्ति कालमें है; अरु जीवरूपी जो मत्स्य हैं, तिनकों शुभाशुभ कर्मरूपी छुरेसों छेदत रहता है; फिर कैसा है, जो काल कूपका चक्र है; जीवरूपी हंडीकों शुभअशुभकर्मरूपी रसुरीसों बांधकर

ले फिरता है, फिर कैसा है? जीवरूपी वृक्षकों रात्रि अरु दिनरूपी कुहाराकर छेदता है.

हे मुनीश्वर! जेता कछु जगत्विलास भासता है, सो सबका ग्रहण काल कर लेवैगा, अरु जीवरूपी रत्नका काल डिब्बा है; सो अपने उदरमें डारता जाता है, औ खेल करता है; अरु चंद्रसूर्यरूपी गेंदकों कबहु ऊर्ध्व उछालता है, कबहु नीचें डारता है; अरु जो महापुरुष है, सो उत्पत्तिप्रलयमें जो पदार्थ हैं, तिनमें स्नेह किसीके साथ नहीं करता, तिसका नाश करनेकों काल समर्थ नहीं; जैसे मुंडकी माला महादेवजी गलेमें धरते हैं; तैसे यह भी जीवकी माला गलेमें डारता है.

हे मुनीश्वर! जो बडे बडे बलिष्ठ हैं, तिनका भी काल ग्रहण कर लेता है, जैसे समुद्र बडा है, तिसका वडवाग्नि पान कर लेता है; औ जैसे पवन भोजपत्रकों उडाता है, तैसा कालका बल है; किसीका सामर्थ्य नहीं जो इसके आगे स्थित रहे.

हे मुनीश्वर! शांतिगुणप्राधान्य जो देवता हैं, अरु रजोगुणप्राधान्य जो बडे राजा हैं; अरु तमोगुणप्राधान्य जो दैत्य राक्षस हैं, तिनमें कोऊ समर्थ नहीं, जो इसके आगे स्थित होवे; जैसे टोकनीमें अन्न अरु जल धरके अग्निपर चढाय दियेतें फिर उछलते हैं, सो अन्नके दाने कडछी करी कबहु ऊर्ध्व औ कबहु नीचे फिर जाते

हैं, तैसे जीवरूपी अन्नके दाने जगत्‌रूपी टोकनीमें परे हूए रागद्वेषरूपी अग्निपें चढे हैं, अरु कर्मरूपी कडछीकर कवहु ऊर्ध्व जाते हैं, कवहु नीचे जाते हैं. हे मुनीश्वर! यह काल किसीकों स्थिर न होने देता, महाकठोर है, दया किसीपर नहीं धरता, इसका भय मुझकों रहता है, तातें सोइ उपाय मुझकों कहो. जिसकर मैं कालतें निर्भय हो जाऊं.

इति श्रीयोगवासिष्ठे वैराग्यप्रकरणे कालवृत्तांतनिरूपण नाम अष्टादशः सर्गः ॥ १८ ॥

एकोनविंशतितमः सर्गः १९.

अथ कालविलासवर्णनं

श्रीराम उवाच—हे मुनीश्वर! यह काल वडा वलिष्ठ है; जैसे राजाके पुत्र शिकार खेलने जाते हैं, तब वनमें वडे पशुपक्षी खेदकों प्राप्त होते हैं; तैसे यह संसाररूपी वन है, तिसमें प्राणिमात्र पशु पक्षी हैं; जब कालरूपी राजपुत्र तिसमें शिकार खेलने आता है, तब सब जीव भयकों पावते हैं, अरु जर्जरीभूत होते हैं, फिर तिनकोंई मारता है.

हे मुनीश्वर! यह काल महाभैरव है, सबका ग्रास कर लेता है; प्रलयमे सबका प्रलय कर डारता है; अरु इसकी जो चंडिका शक्ति है, तिसका बडा उदर है;

अरु कालिका सबका ग्रास करती है, पाछे नृत्य करती है; जैसे वनके मृगको सिंह अरु सिंहिनी भोजन करते हैं, औ नृत्य करते हैं, तैसे जगत्‌रूपी वनमें जीवरूपी मृगका भोजन करके काल अरु कालिका नृत्य करते हैं; बहुरि इनतें जगत्‌का प्रादुर्भाव होता है; नानाप्रकारके पदार्थनकों रचते हैं. पृथ्वी, बगीचे, बावरी, आदि सब पदार्थ इनहीतें उत्पन्न होते हैं; अरु सुंदर जीवनकीहु उत्पत्ति इनतें होती है; औ एक समयमें उनका नाश भी कर देते हैं; सुंदर समुद्र रचके फिर वामें अग्नि लगाय देते हैं, अरु सुंदर कमलकों बनायके फिर वाके उपर बरफकी वर्षा करते हैं; इत्यादि नानापदार्थनकों रचिके तिनका नाश करते हैं, जहां बडे स्थान बसते हैं, तिनकों उजाड कर डारते हैं, फिर उजाडमें बस्ती कर धरते हैं; अरु नाश भी करते हैं; स्थिर रहने किसीकों नहीं देती; जैसे बागमें वानर आयके वृक्षकों ठहरने नहीं देता, तैसे कालरूपी वानर किसी पदार्थकों स्थिर रहने नहीं देता.

हे मुनीश्वर! इस प्रकारसो सब पदार्थ कालसों कर जर्जरीभूत होते हैं, तिसका मैं आश्रय किसी रीतसों करों, मुझकों तो नाशरूप भासता है; तातें अब मुझकों किसी जगत्‌के पदार्थकी इच्छा नहीं.

इति श्रीयोग० वै० कालवि० नाम एकोनविंशतितमः सर्गः ॥१९॥

विंशतितमः सर्गः २०.

अथ कालजुगुप्सावर्णनं

राम उवाच—हे मुनीश्वर! इस कालका महापराक्रम है; इसके तेजके सन्मुख रहनेकों कोउ समर्थ नहीं; क्षणमें ऊंचकों नीच कर डारता है, अरु नीचकों ऊंच कर डारता है, तिसका निवारण कोउ कर नहीं शकता, सब इसीके भयसें परे कंपते हैं, यह महाभैरव है; सब विश्वका ग्रास कर लेता है; अरु इसकी चंडिकारूप शक्ति है, सो बलवान है, सो नदीरूप है, तिसका उल्लंघन कोउ नहीं करी शकता है; अरु महाकालरूप काली है, तिसका वडा भयानक आकार है, अरु कालरूप जो रुद्र है, तिसतें अभिन्नरूपी कालिका है; सो सबका पान कर लेती है, पाछे भैरव अरु भैरवनी नृत्य करते हैं.

सो काल कालिका कैसे हैं, बडा जिनका आकार है अरु आकाश शीश है, अरु जिनका पाताल चरण हैं, दशों दिशा जिनकी भुजा हैं; सप्त समुद्र जिनके हाथमें कंकन हैं, संपूर्ण पृथ्वीरूप तिनके हाथमें पात्र है, तिनके उपर जीव हैं सो भोजनयोग्य हैं; हिमालय अरु सुमेरु पर्वत दोनों कानमें वडे रत्न हैं; चंद्रमा सूर्य जिनके लोचन हैं; अरु सब तारागण वांके मस्तकमें बिंद

हैं; अरु हाथमें त्रिशूल अरु मुसल आदि शस्त्र हैं; अरु जिनके हाथमें तंद्रारूपी फांसा है, तिसकर जीवकों मारते हैं, ऐसे काल औ कालिका देवी है. औ जो कालिका देवी है, सो सब जीवनका ग्रास करके महा भैरव जो रुद्र है, तिसके आगे नृत्य करती है; अरु अट्ट! अट्ट! ऐसा शब्द करती है; अरु जीवनका भोजन करके उनकी रुंडमाला गलेमे धारण करती है; सो भैरवके आगे नृत्य करती है; अरु भैरव कैसा है, जो जिसके बल आगे सन्मुख रहेनेकी शक्ति कोउमें नहीं है; अरु जहां उजार है, तहां क्षणमें वस्ती कर डारता है; अरु जहां वस्ती होवै तहां क्षणमें उजार करता है, इसीतें तिसका नाम देव कहते हैं, अरु तिसकों कृतांत भी कहते हैं, अरु बडे बडे पदार्थ उपजत होते हैं; अरु तिसका नाश भी होता है, अरु स्थिर किसीकों रहने नहीं देता, तिसतें इसका नाम कृतांत है; अरु नित्यरूपीहु यही है जो इस आदि धन्या है, सोइ कर्त्ता अरु कर्मरूप है, काहेतें जो परिणाम जिसका अनित्य रूप है; इसीतें इसका कर्म नाम है; सो कैसे नाश करता है; जब अभावरूपी धनुष्य हाथमें धरता है तिसकर रागदोषरूपी वान चलाता है, तिस वाणतें जर्जरीभूत करके नाश करता है; अरु उत्पत्तिनाशमें उसकों यत्न भी कछु करना नहीं पडता है; इसकों तौ

खेल जैसा है; जैसे बालक मृत्तिकाकी सेना बनाता है; फिर उठायकर नाश भी कर देता है; तैसे कालकों उपजावने अरु नाश करनेमें यत्न करना नहीं पडता है. हे मुनीश्वर! कालरूपी धीवर है, तिसने क्रियारूपी जाल पसारी है, तिसविषे जीवरूपी पक्षी पडे फसते हैं; सो फसे हुए शांतिकों नहीं प्राप्त होते. हे मुनीश्वर! यह तो सब नाशरूप पदार्थ हैं, इनमें आश्रय किसीका करना, जिसकर सुखी होवैं, तो स्थावरजंगम जगत् सब कालके मुखमें हैं; यह सब नाशरूप मुझकों दृष्टिमें आवे हैं, तातें निर्भय पद होय सो मुझकों कहौ.

इति श्रीयोगवासिष्ठे वैराग्यप्रकरणे कालजुगुप्सावर्णनं नाम विंशतितमः सर्गः ॥ २० ॥

एकविंशतितमः सर्गः २१.

अथ कालविलासवर्णनं

श्रीराम उवाच—हे मुनीश्वर! जेते कछु पदार्थ भासते हैं, सो सब नाशरूप हैं, तातें किसकी इच्छा करों? औ कोनका आश्रय करों? इनकी इच्छा करनी सो मूर्खता हैं; अरु जेती कछु चेष्टा अज्ञानी करता है सो सब दुःखके निमित्त हैं; अरु जीवनेमें अर्थकी सिद्धि कछु नहीं है; काहेतें जो बालक अवस्था होती है, तब मूढता रहती है, विचार कछु नहीं रहता, अरु

जब युवा अवस्था आती है, तब मूर्खता करके विषयकों सेवते हैं; अरु मानमोहादि विकारसो मोहेई जाते हैं; तामें भी विचार कछु नहीं होता, अरु स्थिर भी नहीं रहते, फिर दीनका दीन रहिके विषयकी तृष्णा करता है; शांतिकों नहीं पावता है.

हे मुनीश्वर ! आयुष्य जो है सो महाचंचल है; अरु मृत्यु तौ निकट है, वाको अन्यथा भाव नहीं होवे. हे मुनीश्वर ! जेते कछु भोग हैं सो रोग हैं; अरु जिसकों संपदा जानते हैं, सो आपदा है; अरु जिसकों सत्य कहते है सो असत्यरूप हैं; अरु जिस स्त्रीपुत्रादिककों मित्र जानते हैं, सो सब बंधनका कर्ता हैं; अरु इंद्रिय जो हैं, सो महाशत्रुरूप हैं, सो सब मृगतृष्णाके जलवत् हैं, अरु यह देह है सो विकाररूप है; अरु मन महाचंचल है; औ सदा अशांतरूप है; अरु अहंकार जो है सो महानीच है; इसनेंई दीनताकों प्राप्त किया है; इसकर जेते कछु पदार्थ इसकों सुखदायक भासते हैं, सो सब दुःखके देनहारे हैं, तिसकर इसकों कदाचित् शांति नहीं होती, ताते मुझकों इनकी इच्छा नहीं; यद्यपि देखनेमात्र सुंदर भासते हैं, तौ भी इनमे सुख कछु नहीं; सो पदार्थ स्थिर रहनेका नहीं. जैसे समुद्रमें नानाप्रकारके तरंग भासते हैं, सो सब वडवाग्निकर

नाश होते हैं, तैसे यह पदार्थ भी नाशकों पावते हैं; मैं अपनी आयुविषे कैसे आस्था करौं ?

हे मुनीश्वर! वडे समुद्र जो दृष्टि आवते हैं, अरु सुमेरु आदि वडे पदार्थ हैं, सो सब नाशकों पाते हैं; तब हमसारिखेकी कहा वार्ता है! औ वडे वडे दैत्य राक्षसहु होयके नाश पाय गये हैं, तौ हमसारिखेकी कहा वार्ता है! अरु देवता, सिद्ध, गंधर्व, हुए हैं सो सब नाशकों पाते हैं, तिनकी नाम संज्ञा भी नहीं रही तब हमसारिखेकी कहा वार्ता! पृथ्वी, जल, अरु अग्नि जो दाहकशक्ति धरनेवाला है, अरु पवन जो है, सो वीर्यसहित सब नाश हो जायेंगे कछु इनकी सत्यता भी न रहैगी, तौ हमसारिखेकी कहा वार्ता! अरु यम, कुबेर, वरुण, इंद्र; वडे तेजवाले हैं; सो सब नाश पावैंगे तौ हमसारिखेकी कहा कहनी है! औ तारामंडल जो दृष्ट आते हैं, सो सब गिर पडेंगे. जैसे सूके पात वृक्षतें वायुसों गिर जाते हैं, तैसे तारे गिरते हैं, तब हमसारिखेकी कहा वार्ता! हे मुनीश्वर! ध्रुव, जो स्थिर भासता है, सो भी अस्थिर हो जायगा अरु चंद्रमा अमृतमय मंडलका दृष्टिमें आता है, औ सूर्य अखंडमंडल है जिसका, ऐसा जो प्रकाशसंयुक्त दृष्टि आता है, सो सब नाश हो जावहींगे, तौ हमसारिखेकी कहा वार्ता है! औरनकीहु कहा वार्ता है! यह जो वडे ईश्वर जगतके अधिष्ठाता

हैं तिनका भी अभाव होय जाता है,परमेष्ठी जो ब्रह्मा है, तिनका भी अभाव होय जाता है; हरि जो विष्णु सो भी हर जायेंगे; महाभैरवरूप जो रुद्र, सो भी शून्य हो जायगा, तौ हमसारिखेकी कहा वार्ता करनी ! अरु काल जो सबकों भक्षण करनेहारा है, सो भी टूकटूक होयके नाशकों प्राप्त होवैगा; अरु कालकी स्त्री जो नेत है, सोहु अनेतताकों प्राप्त होवैगी; अरु सबका आधार जो आकाश है; सो भी नाश हो जायगा, तौ हमसारिखेकी कहा वार्ता ? अरु जेता कछु जगत् अर्थकर सिद्ध होता है, सो सब नाश हो जावैगा, कोउहु स्थिर रहनेका नहीं तब हम किसकी आस्था करैं ? अरु किसका आश्रय करै ? यह जगत् सब भ्रममात्र है; अज्ञानीकी इसमें आस्था होती है, औ हमारी नहीं है; जो जगतभ्रम कैसे उत्पन्न भया है, अरु मैं इतना जानता हौं, जो संसारनें इतना दुःखी होते हैं, सो अहंकारमें किया है.

हे मुनीश्वर ! इसका जो परमशत्रु अहंकार है, इस करके भटकता फिरता है, जैसे जेवरीसाथ बांध्या हुआ पतंग कबहु ऊर्ध्व, कबहु नीचे जाता है, स्थिर कबहु नहीं रहता, तैसे जीवहु अहंकार करके कबहु ऊर्ध्व कबहु अध जाता है, स्थिर कबहू नहीं होता. जैसे

अश्वतें आरूढ रथ तिनके उपर बैठके सूर्य आकाशमार्गमें भ्रमता है, तैसे यह जीव भ्रमता है, स्थिर कदाचित् नहीं होता. हे मुनीश्वर ! यह जीव परमार्थ सत्यस्वरूपतें भूला हुआ भटकता हैं; अरु अज्ञान करके संसारमें आस्था करता है; अरु भोगहुकों सुखरूप जानकर तिसमें तृष्णा करता है, औ जिसकों सुखरूप जानता है, सो रोगसमान है; औ विषकर पूर्ण सर्प जैसे हैं, सो जीवका नाश करनहारे हैं औ जिनकों सत्य जानता है, सो असत्य हैं, सब कालके मुखमें ग्रसे हुए हैं.

हे मुनीश्वर ! विचारविना अपना नाश आपही करता है; काहेतें जो इसका कल्याण करनेहारा बोध है; जो सत्य विचार बोधके शरण-जाय तो कल्याण होवै, औ जेते पदार्थ है, सो स्थिर कोउ नहीं इनकों सत्य जानना दुःखके निमित्त है. हे मुनीश्वर ! जब तृष्णा आती है तब आनंद अरु धैर्यकों नाश कर देती है, जैसे वायु मेघका नाश कर डारता है तैसे तृष्णा नाश कर डारती है तातें मुझकों सोई उपाय कहौ, जिसकर जगत्का भ्रम मिट जावे, अरु अविनाशी पदकी प्राप्ति होवै. इस भ्रमरूप जगत्की आस्था मैं नहीं देखता; तातें इच्छा चाहै तैसी करौ, परंतु सुखदुःख इसीकों होनै हैं सो होइंगे, मिटवेके नहीं; भावै पहारकी कंदरामें बैठो, भावै

कोटमें बैठो, परंतु जो होनेका सो मिथ्या नहीं होवे है; इसनिमित्त यत्न करनां मूर्खता है.

इति श्रीयोगवासिष्ठे वैराग्यप्रकरणे कालविलासवर्णनं नाम एकविंशतितमः सर्गः ॥ २१ ॥

द्वाविंशतितमः सर्गः २२.

अथ सर्वपदार्थाभाववर्णन



राम उवाच—हे मुनीश्वर ! यह जो नानाप्रकारके सुंदर पदार्थ भासते हैं, सो सब नाशरूप हैं, इसकी आस्था मूर्ख करते हैं; यह तो मनकी कल्पना कर रचे हुए हैं, तिसमें किसकी आस्था करों ?

हे मुनीश्वर ! अज्ञानी जीवका जीवना व्यर्थ है; काहेतें जो जीवनेतें उनका अर्थ सिद्ध कछु नहीं होता, जब कुमार अवस्था होती है, तब मूढ बुद्धि होती है, तिसमें विचार कछु नहीं होता, जब युवावस्था आती है, तब कामक्रोधादिक विकार उत्पन्न होते हैं, तिनकर सदा ढांपे रहेते हैं; जैसे जालमें पक्षी बंध जाता है, अरु आकाशमार्गकों देखी नहीं शकता है, तैसे कामक्रोधादिक करी ढप्या हुआ विचारमार्गकों देखी नहीं शकता; जब वृद्धावस्था आती है, तब शरीर जर्जरीभूत हो जाता है, अरु महादीन होता है, बहुरी शरीरकों भी त्याग देता है, जैसे कमलके उपर बरफ पडता है,

तब तिसका भौंरा त्याग करता है, तैसे जब शरीररूपी कमलकों जराका स्पर्श होता है, तब जीवरूपी भौंरा त्याग कर देता है.

हे मुनीश्वर ! यह शरीर तबलग सुंदर है, जबलग वृद्धावस्था प्राप्त नहीं होती; जैसे चंद्रमाका प्रकाश राहु दैत्यनें आवरण नहीं किया तबलग रहता है, जब राहु दैत्य आवरण करता है, तब प्रकाश नहीं रहता है, तैसे जरा अवस्थाके आये युवा अवस्थाकी सुंदरता जाती रहती है. हे मुनीश्वर ! जराके आयेतें शरीर कृश हो जाता है, अरु तृष्णा बढ जाती है; जैसे वर्षाकालमें नदी बढ जाती है; तैसे जरा अवस्थामें तृष्णा बढ जाती है; अरु जो पदार्थकी तृष्णा करता है, सो पदार्थ भी दुःखरूप है; तृष्णा करके आपहीं दुःख पावता है.

हे मुनीश्वर ! तृष्णारूपी समुद्र है, तिसमें चित्तरूपी बेडा पऱ्या है; रागदोषरूपी मत्स्यकरि कबहु ऊर्ध्व जाता है, कबहु नीचे आता है, स्थिर कदाचित् नहीं रहता. हे मुनीश्वर ! कामरूपी वृक्ष है; तिस वृक्षमें तृष्णारूपी लता लगती है, तिसमे विषयरूपी फूल हैं; जब जीवरूपी भौंरे तिसके उपर बेठते हैं, तब विषयरूपी वेलीसों मृतक हो जाते हैं.

हे मुनीश्वर ! तृष्णारूपी एक बडी नदी है, तिसमें रागदोषादिक बडे मत्स्य रहते हैं; तिस नदीमें परे हुए

जीव दुःख पाते हैं; अरु जो संसारकी इच्छा करता है, सो नाशरूप है.

हे मुनीश्वर! उन्मत्त हस्ती अरु तुरंगके समूह ऐसा जो नररूपी समुद्र तिसकों तर जाते हैं तिसकों भी मैं शूरा नहीं मानता, परंतु जो इंद्रियरूपी समुद्र, तिसमें मनोवृत्तिरूपी तरंग उठते हैं, ऐसे समुद्रकों जो तर जाता है, तिसको शूरा मानता हौं; जिसके परिणाममें दुःख होवे, तैसी क्रिया अज्ञानी जीव आरंभ करते हैं; औ जिसके परिणाममें सुख है, तिसका आरंभ नहीं करते औ कामके अर्थकी धारणा करते है; ऐसे आरंभ कियेतें शरीरकी शांति पाछेहु सुखकी प्राप्ति नहीं होती; ऐसेई कामना करके सदा जलते रहते हैं; अनात्मपदार्थकी तृष्णा करते हैं, सो शांतिकों कैसे प्राप्त होवै ?

हे मुनीश्वर! यह तृष्णारूपी नदी है, तिसमें वडा प्रवाह है, तिसके किनारे वैराग्य अरु संतोष दोनों वृक्ष खडे हैं, तो तृष्णा नदीके प्रवाहतें तिन दोनोंका नाश होता है हे मुनीश्वर! तृष्णा वडी चंचल है, किसीकों स्थिर होने नहीं देती; अरु मोहरूपी एक वृक्ष है, तिसके चहुंफेर स्त्रीरूपी वल्ली है, सो विष करके पूर्ण है, तिसपर चित्तरूपी भौरा आय वैठता है, तव स्पर्शमात्रतें नाश पावता है; जैसे मोरका पुच्छ हिलता रहेता है, तैसे अज्ञानीका चित्त चंचल रहता है, सो

मनुष्य पशुके समान है; जैसे पशु दिनकों जंगलमें जाय आहार करते चलते फिरते हैं, अरु रात्रिकों आय घरमें खुंटासों बंधन पावते हैं तैसे मूर्ख मनुष्यहु दिनकों घर छोडके व्यवहारमें फिरते हैं, अरु रात्रिकों आय अपने घरमें स्थिर होते हैं; तातें परमार्थकी सिद्धि कछु नहीं होती; जीवना वृथा गुमावते हैं.

बालक अवस्थामें शून्य रहते हैं; अरु युवा अवस्थामें कामकरि उन्मत्त होते हैं, सो कामकरके चित्तरूपी उन्मत्त हस्ती स्त्रीरूपी कंदरामें जाय स्थित होते हैं; सो भी क्षणभंगुर है; बहुरि वृद्धावस्था होती है, तिसकरि शरीर कृश हो जाता है; जैसे वरफतें कमल जर्जरीभावकों प्राप्त होता है, तैसे जरा करके शरीर जर्जरीभावकों प्राप्त होता है; अरु सब अंग क्षीण हो जाते हैं; अरु एक तृष्णा वढ जाती है.

हे मुनीश्वर! यह पुरुष महापशु है, सो आकाशके फूल लेनेकी इच्छा करता है; ऐसे बडे पर्वतपर चढकर आकाशका फूल लेनेकी इच्छा करता है, सो फिर बडी कंदरा अरु वृक्षमें गिर पडता है! तैसे यह जीव मनुष्यरूपी पर्वतपर आय रह्या है, अरु आकाशके फूलरूपी जगतके पदार्थकी इच्छा करता है, सो नीचेकों गिर पडनेका है, सो रागदोषरूपी कंटवृक्षमें जाय पडेगा. हे मुनीश्वर! जेते कछु जगतके पदार्थ हैं, सो सब

आकाशके फूलकी नांई नाशवान है, इनमें आस्था करनी सो मूर्खता है, यह तौ शब्द मात्र जैसा है; तिसते अर्थसिद्धि कछु नहीं होती.

अरु जो ज्ञानवान पुरुष हैं, तिनको विषयभोगकी इच्छा नहीं रहती; काहेतें जो आत्माके प्रकाशकर इनकों मिथ्या जानते हैं. हे मुनीश्वर ! ऐसे ज्ञानवान पुरुषसो दुर्विज्ञेय हैं, हमकों तौ स्वपनेमें भी नहीं भासता है; औ यह विरक्तात्मा दुर्लभ है; जिनकों भोगकी इच्छा नहीं है, सर्वदा ब्रह्मकी स्थिति कर भासता है, ऐसे पुरुषकों ससारकी इच्छा कछु नहीं रहती, काहेतें जो यह पदार्थ नाशरूप हैं हे मुनीश्वर ! पर्वतकों जिस और देखिये तहां पत्थरकर पूर्ण दृष्टि आता है; अरु पृथ्वी मृत्तिकाकरि पूर्ण दृष्टि आती है, अरु वृक्ष काष्ठकरि पूर्ण दृष्टि आता है; समुद्र जलकर पूर्ण दृष्टि आता है, तैसे शरीर अस्थि, मांसकर पूर्ण भासता है; ये सब पदार्थ पाच तत्त्वकरि पूर्ण हैं, औ नाशरूप हैं; ऐसा रूप ज्ञानी जानके किसीकी इच्छा नहीं करता.

हे मुनीश्वर ! यह जगत् सब नाशरूप है; देखते देखते नाशकों पावता है; तिसमें मैं किसका आश्रय करके सुख पाऊं ! जब युगकी सहस्र चोकरी होती है, तब ब्रह्माका एक दिन होता है; तिस दिनके क्षय हुएतें सब जगतका प्रलय होता है; बहुरि ब्रह्माहु काल-

कर नाश हो जाता है; अरु ब्रह्माहु जितने हो गये हैं तिनकी संख्या नहीं होती; असंख्य ब्रह्मा नाश हो गये हैं, तौ हमसारिखेकी कहा वारता करनी है ! हम काउ भोगकी वासना नहीं करते, क्यौं जो सब चलरूप हैं, कछु स्थिर रहनेका नहीं, सब नाशरूप है, इनकी आस्था मूर्ख करते हैं. तिसके साथ हमकों कछु प्रयोजन नहीं; जैसे मृग मरुस्थलकों देख जलपान करनेकों दौरता है, सो शांतिकों नहीं पावता, तैसे मूर्ख जीव जगत्के पदार्थकों सत्य मानकर तृष्णा करता है, परंतु शांतिकों नहीं पावता, काहेतें जो सब असाररूप है; अरु-

जो स्त्री, पुत्र, कलत्र भासते हैं, सो जबलग शरीर नष्ट नहीं हुआ तबलग भासते हैं; जब शरीर नष्ट होजायगा तब जानिवेमें भी न आवैगा जो कहां गये? अरु कहांतें आये थे ! जैसे तेल अरु वत्तीकर दीपक प्रकाशताहै तब वडा प्रकाशवान दृष्टि आवता है पाछे जब बूझ जाता है, तब जान्या नहीं जाता जो कहां गया, तैसे वत्तीरूप बांधव हैं; औ तिसविषे स्नेहरूपी तेल है; तिसकर जो शरीर भासता है सो प्रकाश है; जब शरीररूपी दीपका प्रकाश बूझ जाता है तब जान्या नहीं जाता जो कहां गया. हे मुनीश्वर! यह बंधुका मिलाप है; सो जैसे तीर्थयात्राका संघ चल्या जाता होवे, सो

सब एक क्षणमे वृक्षकी छाया नीचे बेठते हैं; फिर न्यारे न्यारे होय जाते हैं, तैसा बांधवका मिलाप है; जैसे उस यात्रामें स्नेह करना मूर्खता है, तैसे इनमें भी स्नेह करना मूर्खता है.

हे मुनीश्वर! अहंममताकी जेवरीके साथ बांधे हुए घटीयंत्रकी नाई सब भ्रमते फिरते है, तिनकों शांति कदाचित् नहीं होती, यह देखनेमात्र तौ चेतन दृष्टि आवता है, परंतु पशु अरु वंदर इनतें श्रेष्ठ हैं, जिनकी संमति देह इंद्रियकेसाथ बांधी हुई है, अरु आगमापाई है; इसमे आस्था रखनी सो महामूर्खता है, उनकों आत्मपदकी प्राप्ति होनी कठिण है, जैसे पवनकर वृक्षके पात तूटके उड जाते हैं, फिर उनकों वृक्षकेसाथ लगना कठिन है, तैसे जो देहादिकसाथ बांधे हुए हैं तिनकों आत्मपद पावना कठिन है.

हे मुनीश्वर! जब आत्मपदतें विमुख होता है, तब जगत्के भ्रमकों देखता है; अरु जब आत्मपदकी और आता है, तब संसार इसकों वडा विरस लगता है; औ ऐसा पदार्थ जगत्में कोउ नहीं जो स्थिर रहैगा, जो कछु पदार्थ हैं सो नाशकों प्राप्त होते हैं, तातें मैं किसकी आस्था करों? औ किसका आश्रय करों? सब नाशवंत भासते हैं, वह पदार्थ मुझकों कहौ, जिसका नाश न होवे.

इति श्रीयो० वै० सर्वपदार्थाभावो नाम द्वाविंशतितमः सर्गः॥२२॥

कर नाश हो जाता हैं; अरु ब्रह्माहु जितने हो गये हैं तिनकी संख्या नहीं होती, असंख्य ब्रह्मा नाश हो गये हैं, तौ हमसारिखेकी कहा वारता करनी है! हम काउ भोगकी वासना नहीं करते, क्यौं जो सब चलरूप हैं, कछु स्थिर रहनेका नहीं, सब नाशरूप है, इनकी आस्था मूर्ख करते हैं. तिसके साथ हमकों कछु प्रयोजन नहीं; जैसे मृग मरुस्थलकों देख जलपान करनेकों दौरता है, सो शांतिकों नहीं पावता, तैसे मूर्ख जीव जगत्के पदार्थकों सत्य मानकर तृष्णा करता है, परंतु शांतिकों नहीं पावता, काहेतें जो सब असाररूप है; अरु.

जो स्त्री, पुत्र, कलत्र भासते हैं, सो जबलग शरीर नष्ट नहीं हुआ तबलग भासते हैं; जब शरीर नष्ट होजायगा तब जानिवेमें भी न आवैगा जो कहां गये? अरु कहांतें आये थे! जैसे तेल अरु वत्तीकर दीपक प्रकाशताहै तब वडा प्रकाशवान दृष्टि आवता है पाछे जब बूझ जाता है, तब जान्या नहीं जाता जो कहां गया, तैसे वत्तीरूप बांधव हैं; औ तिसविषे स्नेहरूपी तेल है; तिसकर जो शरीर भासता है सो प्रकाश है; जब शरीररूपी दीपका प्रकाश बूझ जाता है तब जान्या नहीं जाता जो कहां गया. हे मुनीश्वर! यह बंधुका मिलाप है; सो जैसे तीर्थयात्राका संघ चल्या जाता होवै, सो

सब एक क्षणमें वृक्षकी छाया नीचे बैठते हैं; फिर न्यारे न्यारे होय जाते हैं, तैसा बांधवका मिलाप है; जैसे उस यात्रामें स्नेह करना मूर्खता है, तैसे इनमें भी स्नेह करना मूर्खता है.

हे मुनीश्वर! अहंममताकी जेवरीके साथ बांधे हुए घटीयंत्रकी नाई सब भ्रमते फिरते हैं, तिनकों शांति कदाचित् नहीं होती, यह देखनेमात्र तौ चेतन दृष्टि आवता है, परंतु पशु अरु बंदर इनतें श्रेष्ठ हैं; जिनकी संमति देह इंद्रियकेसाथ बांधी हुई है, अरु आगमापाई है; इसमें आस्था रखनी सो महामूर्खता है; उनकों आत्मपदकी प्राप्ति होनी कठिण है, जैसे पवनकर वृक्षके पात तूटके उड जाते हैं, फिर उनकों वृक्षकेसाथ लगना कठिन है, तैसे जो देहादिकसाथ बांधे हुए हैं तिनकों आत्मपद पावना कठिन है.

हे मुनीश्वर! जब आत्मपदतें विमुख होता है, तब जगतके भ्रमकों देखता है; अरु जब आत्मपदकी ओर आता है, तब संसार इसकों बडा विरस लगता है; औ ऐसा पदार्थ जगतमें कोउ नहीं जो स्थिर रहैगा, जो कछु पदार्थ हैं सो नाशकों प्राप्त होते हैं, तातें मैं किसकी आस्था करों? औ किसका आश्रय करों? सब नाशवंत भासते हैं, वह पदार्थ मुझकों कहो, जिसका नाश न होवे.

इति श्रीयो० वै० सर्वपदार्थाभावनाम द्वात्रिंशतितमः सर्गः॥२२॥

त्रयोविंशतितमः सर्गः २३.

अथ जगद्विपर्ययवर्णनं.



श्रीराम उवाच—हे मुनीश्वर! जेता कछु स्थावरजंगम जगत् दीसता है, सो सब नाशरूप है, कछु भी स्थिर रहनेका नहीं; जो खाई थी सो जलकर पूर्ण हो गई है, अरु जो वडे जलकर समुद्र पूर्ण दिखते थे, सो खाईरूप व्है गये; अरु जो सुंदर वडे वगीचे थे, सो आकाशकी नांई शून्य हो गये, अरु जो शून्य स्थान थे, सो सुंदर वृक्ष हुए वनकर दृष्टि आते हैं; जहां वस्ती थी, तहां उजार हो गई है; अरु जहां उजार थी तहां वस्ती हो गई है; अरु जहां गडेले थे, तहां पर्वत हो गये हैं; अरु जहां वडे पर्वत थे, तहां समान पृथ्वी हो गई. हे मुनीश्वर ! इस प्रकार पदार्थ देखत विपर्यय हो जाते हैं, स्थिर नहीं रहते, वहुरि मैं किसका आश्रय करौं ? अरु किसे पावनेका जतन करौं; यह पदार्थ तो सब नाशरूप हैं; अरु जो वडे वडे ऐश्वर्यकर संपन्न थे; अरु जो वडे कर्त्तव्य करते थे, औ वडे वीर्यवान, वडे तेजवान हुए हैं; सो भी मरणमात्र होगये हैं, तब हमसारिखेकी कहा वार्त्ता है? सब नाश होते हैं, तब महारे भी घडी पलमें चल जाना है, रहना किसीकों नहीं.

हे मुनीश्वर ! यह पदार्थ वडे चंचलरूप हैं, सो

एकरस कदाचितहु नहीं रहते. एक क्षणमें कछु हो जाता है, दूसरी क्षणमें कछु हो जाता है! एक क्षणमें दरिद्री हो जाते हैं, दूसरी क्षणमें संपदावान हो जाते हैं! एक क्षणमें जीवते दृष्टि आवते हैं, दूसरी क्षणमे मर जाते हैं, एक क्षणमें मुवे भी जीते उठते हैं; यह संसारकी स्थिरता कवहु नहीं होती; ज्ञानवान इसकी आस्था नहीं करते, एक क्षणमें समुद्रके प्रवाहके ठिकाने मरुस्थल होय जाते हैं, अरु मरुस्थलमें जलके प्रवाह हो जाते हैं. हे मुनीश्वर! इस जगत्का आभास स्थिर नहीं रहता; जैसे बालकका चित्त स्थिर नहीं रहता तैसे जगत्का पदार्थ एक भी स्थिर नहीं रहता; जैसे नट स्वांगकों धरता है, सो कवहु कैसा; कवहु कैसा; एक स्वांगमे नहीं रहता; तैसे जगत्के पदार्थ अरु लक्ष्मी एकरस नहीं रहते; कवहु पुरुष स्त्री हो जाता है; कवहु स्त्री पुरुष हो जाती है, अरु मनुष्य पशु हो जाता है, पशु मनुष्य हो जाता है, औ स्थावरका जंगम, अरु जंगमका स्थावर हो जाता है, मनुष्य देवता हो जाता है, औ देवताका मनुष्य हो जाता है, इस प्रकार घटीयंत्रकी नांई जगत्की लक्ष्मी स्थिर नहीं रहती, कवहु ऊर्ध्वकों जाती है, कवहु अधकों जाती है, स्थिर कवहु नही रहती, सदा भटकत रहती है.

हे मुनीश्वर ! जेते कछु पदार्थ दृष्टिमें आते हैं, वे सब नष्ट हो जानेके हैं; कैसेई स्थिर रहनेके नहीं; ए सब नदियां हैं, सो सब वडवाग्निमें लय होय जायेंगी; तैसे जेते कछु पदार्थ हैं, सो सब अभावरूपी वडवाग्निकों प्राप्त होहिंगे; अरु वडे वलिष्ठहु मेरे देखते लीन हो गये हैं; अरु जो वडे सुंदर स्थान सो शून्य हो गये हैं; अरु जो सुंदर ताल, अरु वगीचे, मनुष्यकरि संपूर्ण ऐसे स्थान सो शून्य हो गये हैं; अरु जो मरुस्थलकी भूमिका, सो सुंदरताकों प्राप्त भई है, अरु घटपट हो गये हैं; वरके शाप हो जाते हैं; शापके वर हो जाते हैं; इस प्रकार हे विप्र ! जो जगत् दृष्टिमें आता है, सो कबहु संपदा, कबहु आपदारूप है; अरु महाचपलरूप है. हे मुनीश्वर ! ऐसे सब अस्थिरूप पदार्थ हैं, तिसका विचारविना मैं कैसे आश्रय करौं ? अरु किसकी इच्छा करौं ? सब नाशरूप है.

औ जो यह सूर्य प्रकाशकर दृष्टिमें आवता है, सो भी अंधकाररूप हो जायगा; अरु अमृतकर पूर्ण जो चंद्रमा दृष्टिमें आवता है, सो भी विषकर पूर्ण हो जायगा; अरु सुमेरु आदिक जो पर्वत दृष्टि आवते हैं, वे सब नाश होयेंगे; सब लोक नाश हो जायेंगे; अर्थात् मनुष्य, देवता, यक्ष, राक्षस, आदिक सब नाश पावेंगे. तातें हे मुनीश्वर ! और किसीकी क्या कहनी

है; ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र, जो जगत्के ईश्वर हैं, वे भी शून्य हो जायेंगे, तौ हमसारिखेकी कहा वार्ता कहनी है! जेता कछु जगत् दृष्टि आवता है, औ स्त्री, पुत्र, बांधव, ऐश्वर्य, वीर्य, तेजकरिके नानाप्रकारके जीव जो भासते हैं; सो सब नाशरूप है. बहुरि मैं किस पदार्थका आश्रय करौं, औ किसकी इच्छा करौं!

हे मुनीश्वर! जो पुरुष दीर्घदर्शी है, तिसकों तौ सब पदार्थ विरस हो गये हैं, किसी पदार्थकी इच्छा नहीं करते; काहेतें जो सब पदार्थ नाशरूप भासते हैं; औ अपनी आयुष्यको बिजुरीके चमकावत् देखते हैं; जैसे बिजुरीका चमकार होता है, तैसा शरीरका आयुष्य है; जिसको अपनी आयुष्यकी प्रतीति होती है, सो किसीकी इच्छा करता नहीं, जैसे किसीकों बलिदानअर्थ पालते हैं, तब उह खाने, पीने, भुगतनेकी इच्छा नहीं करता; तैसे जिसको अपना मरना सन्मुख भासता है, तिसकों भी किसी पदार्थकी इच्छा नहीं रहती; यह सब पदार्थ आपही नाशरूप हैं, तौ हम किसीका आश्रयकर सुखी होवैं? जैसे कोउ पुरुष समुद्रमे मत्स्यके आश्रय करके कहे जो मैं इसपर बैठके समुद्रके पार जाउंगा, अरु सुखी होउंगा, सो मूर्खता करके डूबहीं मरेगा, तैसे जिस पुरुषनें

इस पदार्थका आश्रय लिया है, अरु अपनें सुखके निमित्त जानता है, सो नाशकों प्राप्त होयगा.

हे मुनीश्वर! जो पुरुष जगत्कों विचारता रहता है, तिसकों यह जगत् रमणीय भासता है, अरु रमणीय जानके नानाप्रकारके कर्म करता है, अरु नानाप्रकारके संकल्प करके जगत्में भटकता है, कबहु उपर, कबहु नीचे आता है; जैसे पवनकर धूर कबहु उंचे, कबहु नीचे आती है, अरु स्थिर नहीं रहती, तैसे यह जीव भटकता फिरता है, स्थिर कबहु नहीं रहता; अरु जिस पदार्थकी इच्छा करता है, सो सब कालका ग्रासरूप हो गये हैं, जैसे बनमें अग्नि लगती है, तब सब इंधनादिकको जारती है, तैसे जेते कछु पदार्थ हैं; सो सब इंधनरूपी हैं; जगत् बन है; तिसकों कालरूपी अग्नि लगी है, तिसनें सबकों ग्रास लिया है; बहुरि जो इस पदार्थकी इच्छा करते है, सो महामूर्ख हैं.

अरु जिनकों आत्मविचारकी प्राप्ति है, तिनकों यह जगत् भ्रमरूप भासता है, अरु जिसकों आत्मविचारकी प्राप्ति नहीं है, तिनकों यह जगत् रमणीय भासता है, अरु जगत्को देखते नाशई हो जाता है; स्वप्नपुरीकी नांई संसारकी मैं कैसे इच्छा करों? यह तो दुःखके निमित्त है, जैसे मिठाईमें विष मिलाया है,

तिसका भोजन करनेवाले मृत्युकों प्राप्त होते हैं, तैसे विषय भुगतनेवाले नाशकों प्राप्त होते है.

इति श्रीयोगवासिष्ठे वैराग्यप्रकरणे जगद्विपर्ययवर्णन नाम त्रयोविंशतितमः सर्गः ॥ २३ ॥

चतुर्विंशतितमः सर्गः २४.

अथ सर्वातप्रतिपादनवर्णनं.

श्रीराम उवाच–हे मुनीश्वर ! इस संसारमें भोगरूपी अग्नि लगी है, तिसकर सब जलते हैं; भोगसों जीव दीन हो गया है; जैसे तालमे हाथीके पावसोंकर कमलका चूर्ण हो जाता है; तैसे भोगसोंकर मनुष्य दीन हो जाते हैं; जैसे वायुसों मेघ नष्ट हो जाता है, तैसे काम क्रोध दुराचारसों शुभ गुण नष्ट होजाते है; जैसे कंटारीके पत्तेमे अरु फलमें कांटे हो जाते हैं, तैसे विषयकी वासनारूपी कंटक आय लगते हैं

हे मुनीश्वर ! यह जगत् सब नाशरूप है; किसी पदार्थका स्थिर रहना नहीं है. वासनारूपी जल, अरु इंद्रियांरूपी गांठी है, तिसमें पुरुप कालसों आय फस्या है, सो वडे दुःखकों प्राप्त होवैगा. हे मुनीश्वर! वासनारूपी सूतमें जीवरूपी मोती परोये हुए हैं; अरु मनरूपी नट आय परोयकर चैतन्यरूपी आत्माके गरेमें डारता है; जव वासनारूपी तागा टूटी पऱ्या तव सब

भ्रम भी निवृत्त होय जावैगा. हे मुनीश्वर ! इसकूं भोगकी इच्छा सो बंधनका कारण है, भोगकी इच्छाकर भटकता है, शांतिकों प्राप्त नहीं होता, तातें मुझकों किसी भोगकी इच्छा नहीं, न राजकी इच्छा है, न घरकी, न वनकी इच्छा है, न मरनेकर दुःख मानता हौं, न जीवनेकर सुख मानता हौं, किसी पदार्थका सुख नहीं; सुख जो होना सो आत्मज्ञानकर होता है, अन्यथा किसी पदार्थकर होता नहीं; जैसे सूर्यके उदय हुएविना अंधकारका नाश नहीं होता, तैसे आत्मज्ञानविना संसारके दुःखका नाश नहीं होता; तातें सोइ उपाय मुझकों कहौ जिसकर मोहका नाश होवै, औ मैं सुखी होऊं. हे मुनीश्वर ! भोगकों भुगतनहारा जो अहंकार है, सो मैंनें त्याग दिया, फिर भोगकी इच्छा कैसे होवैं ? हे मुनीश्वर ! इस विषयरूप सर्पनें जिसका स्पर्श किया है, तिसका नाश हो जाता है. अरु सर्प जिसकों काटता है, सो एक वेर मरता है; अरु विषयरूप सर्प जिसकों काटता है, सो अनेक जन्मपर्यंत मरताही चला जाता है, तातें परम दुःखका कारन विषयभोग है; यातें विषयरूपी परमविप है. हे मुनीश्वर ! आरेके साथ अंगका काटना सहन होता है, अरु वज्रकरके शरीरका चूर्ण होना सो भी मैं सहुंगा, परंतु विषयका भुगतना मेरेसों कैसेई सह्या नहीं जाता; यह

मुझकों दुःखदायक दृष्टिमें आता है; तातें सोई उपाय मुझकों कहो, जिसकर मेरे हृदयतें अज्ञानरूपी अंधकारका नाश होवै; अरु जो न कहोगे तो मैं मेरी छातीपर धैर्यरूपी शिला धरके बैठा रहौंगा, परंतु भोगकी इच्छा न करोंगा.

हे मुनीश्वर ! जेते कछु पदार्थ हैं, सो सब नाशरूप हैं; जैसे बिजुरीका चमकार होय छिप जाता है अरु अंजलिमें जल नहीं ठहरता, तैसे विषयभोग अरु आयुष्य नाश होय जाते हैं, ठहरतें नहीं; जैसे कंढीकर मच्छी दुःख पाती है, तैसे भोगकी तृष्णाकर जीव दुःख पाते हैं, तातें मुझकों किसी पदार्थकी इच्छा नहीं; जैसे किसीने मरीचिकाके जलको सत्य जान सो जलपानकी इच्छा करी दोन्या सो जल पावत नहीं, तातें मैं किसी पदार्थकी इच्छा नहीं करता.

इति श्रीयोगवासिष्ठे वैराग्यप्रकरणे सर्वांतप्रतिपादन नाम चतुर्विंशतितमः सर्गः ॥ २४ ॥

पंचविंशतितमः सर्गः २५.

अथ वैराग्यप्रयोजनवर्णनं

श्रीराम उवाच–हे मुनीश्वर ! संसाररूपी गडेलामें अरु मोहरूपी कीचमें मूर्खका मन गिर जाता है, तिसकर पन्या दुःख पावता है, शांतिवान कबहु नहीं

होता; जब जरा अवस्था आती है, तब सर्व शरीर जर्जरीभूत होकर कांपने लगता है; जैसे पुरातन वृक्षके पत्र पवनकर हिलते हैं, तैसे जरा अवस्थाकर अंग हिलते हैं, अरु तृष्णा वृद्धि हो जाती है; जैसे नीमका वृक्ष ज्यों ज्यों वृद्ध होता है त्यों त्यों कटुता बढती है तैसे तृष्णा बढती है.

हे मुनीश्वर! जिस पुरुषनें देह इंद्रियादिकनका आश्रम अपने सुखनिमित्त लिया है, सो मूर्ख संसाररूपी अंधकूपमें गिरता है, निकस नहीं शकता; अरु अज्ञानीका चित्त भोगका त्याग कदाचित् नहीं करता है. हे मुनीश्वर! जगत्के पदार्थमें मेरी बुद्धि मलीन हो गई है. जैसे वर्षाकालमें नदी मलीन होती है; जैसे मार्गशिर मासमें मंजरी सूकी जाती है; तैसे जगत्की शोभा देखत देखत विरस हो जाती है; जैसे जगत्का पदार्थ मूर्खकों रमणीय भासता है; जैसे पानीका गडेला तृणकरि आच्छादित होता है, अरु मृगका बालक तिस तृणकों रमणीय जानकर खाने जाता है, फिर गिर जाता है; तैसे यह मूर्ख भोगकों रमणीय जानी भुगतके गिर परे हैं, फिर महादुःख पाते हैं; जैसे मृग गडेलापर उडता है, सो सुखी नहीं होता, तैसे यह संसारके पदार्थ गडेलेरूप इन उपर मनरूपी मृग दोडनहारा कैसे सुखी होवे?

हे मुनीश्वर! जगत्के पदार्थसोंकर मेरी बुद्धि चंचल हो गई है, तातें सोई उपाय कहो, जिसकर पर्वतकी नांई मेरी बुद्धि निश्चल होवै; सो पद कैसा है, जो परमानंदके यत्नमें रहता है, अरु निर्भय, निराकार पद, जिसके पायेतें संसार कछु भी नहीं रहता है, बहुरि पावना कछु नहीं रहता है, तैसे संपूर्ण जगत्की नानाप्रकारकी रचना सब दब जाती है; तिस पद पावनेका उपाय मुझकों कहो. हे मुनीश्वर! ऐसे पदतें मेरी बुद्धि शून्य है, ताते मैं शांतिवान नहीं होता. यह संसार अरु संसारके कर्म मोहरूप हैं; इसमें पडे हुए शांतिकों प्राप्त नहीं होते; अरु,

जनकादिक संसारमें रहे हुए कमलकी नाई निर्लेप रहते हैं, शांतिवान संसारमें निर्लेप रहते हैं; सो जैसे कोउ कीचसों पूर्ण होय, अरु कहै जो मुझकों कीचका परश नहीं हुआ, तैसे राजके विक्षेपरूपी कीचमें परे हुए शांतिवान कैसे निर्लेप रहे है, तिसकी समुझ कहा है, सो कृपाकर कहो; अरु तुम जैसे जो संतजन हैं; सो विषयकों भुगतते दृष्ट आते हैं, अरु जगत्की चेष्टा सब करते हैं; सो निर्लेप कैसे रहते है? सो युक्ति कहो; जैसे तुम जलकमलवत् रहते हो सो कहो, यह बुद्धि तो मोहकरि मोही जाती है; जैसे तालमें हस्ती प्रवेश करता है, औ पानी मलीन हो जाता है, तैसे मोहकरि

बुद्धि मलीन होय जाती है, तातें सोई उपाय कहौ, जिसकर बुद्धि निर्मल होवै; यह संतोषमें बुद्धि स्थिर कबहु नहीं रहती; जैसे मूलसों कुहारेकर कट्या वृक्ष स्थिर नहीं होता, तैसे वासनासों कटी बुद्धि स्थिर नहीं रहती; हे मुनीश्वर! संसाररूपी विषूचिका मुझकों लगी है; तातें सोई उपाय कहौ, जिसकर दृश्यका नाश होवै, इसनें मुझकों बडा दुःख दिया है; अरु आत्मज्ञान कब प्रकाश होय, जिसके उदय हुए मोहरूपी अंधकारका नाश होवै. हे मुनीश्वर! जैसे बादरसों चंद्रमा आच्छादित होय जाता है, तैसे बुद्धिकी मलीनताकर मैं आच्छादित हुआ हौं, तातें सोई उपाय कहौ जिसकर आवरण दूर होवै; अरु,

जो आत्मानंद है सो नित्य है, जिसके पायेतें बहुरि पावना कछु नहीं रहता, इसतें संपूर्ण दुःख नष्ट हो जाते हैं; अरु अंतर शीतल हो जाता है, ऐसा जो पद है, तिसकी प्राप्तिका उपाय मुझको कहौ. हे मुनीश्वर! आत्मज्ञानरूपी चंद्रमाकी मुझकों इच्छा है, जिसके प्रकाशकर बुद्धिरूपी कमलनी खिली आती है, अरु जिसकी अमृतरूपी किरणकर तृप्त वृत्ति होती है सो कहौ. हे मुनीश्वर! अब मुझकों गृहमें रहनेकी इच्छा नहीं, अरु वनविषे जानेकी भी इच्छा नहीं; मुझको

ो इसी पदकी इच्छा है, जिस, पायेतें भीतर शांति
ोय जाय.

इति श्रीयोगवासिष्ठे वैराग्यप्रकरणे वैराग्यप्रयोजनवर्णन नाम
ंचविंशतितमः सर्गः ॥ २५ ॥

षड्विंशतितमः सर्ग. २६.

अथ अनन्यत्यागवर्णन

श्रीराम उवाच—हे मुनीश्वर! जो जीवनेकी आ-
स्था करते है, सो मूर्ख है; जैसे पत्रपर जलकी बूद ठह-
ती नहीं, तैसे आयुष्यहु क्षणभंगुर है; जैसे वर्षाकालमें
दर्दुर बोलते है, तब उनका कंठ चंचल सदा फिरकता
रहता है, तैसे आवरदा क्षणक्षणमे चंचल हो जाती है.
जैसे शिवजीके कपालमें चंद्रमाकी रेपा कछुसी है, तैसा
यह शरीर है; हे मुनीश्वर! जिसकों इसमे आस्था है,
सो महामूर्ख है, यह तो कालका ग्रास है, जैसे बिली
चुहेकों पकर लेती है, तैसे सबकों काल पकर लेता है;
जैसे बिली चुहेकों संभाल करने नहीं देती, तैसे सबकों
काल अचानक ग्रहण कर लेता है, अरु किसीकों
भासता नहीं.

हे मुनीश्वर! जब अज्ञानरूपी मेघ आय गरजता
है, तब लोभरूपी मोर प्रसन्न होयके नृत्य करते है; जब
अज्ञानरूपी मेघ वर्षा करता है, तब दुःखरूपी मंजरी

बढने लगती है; अरु लोभरूपी बिजुरी क्षणक्षणमें
होय नष्ट हो जाती है, अरु तृष्णारूपी जालमें फसे
हुए जीवरूपी पक्षी परे दुःख पाते हैं; शांतिकी
प्ति नहीं होती.

हे मुनीश्वर! यह जगतरूपी बडा रोग लग्या
तिसका निवारण करनेका कौनसा पदार्थ है? जो
बनेकों योग्य है, जिसकर भ्रमरूपी रोग निवृत्त होवै,
सोई उपाय कहौ; यह जगत मूर्खकों रमणीय दिखता
है, ऐसे पदार्थ पृथ्वीपर, अरु आकाशमे, अरु देवलो
कमें अरु पातालमें कोउ नहीं जो ज्ञानवानकों र
दिखे; ज्ञानवानकों सब भ्रमरूप भासता है; अरु अज्ञा
नी जगतमें आस्था करता है. हे मुनीश्वर! चंद्रमामें
जो कलंक है, तिसकर शोभा सुंदर नहीं लगती, जब
कलंक दूर होय जाय, तब सुंदर लगै; तैसे मेरे
रूपी चंद्रमामें कामरूपी कलंक लग्या है,
उज्वल नहीं भासता, तातें सोइ उपाय कहौ;
कर कलंक दूर हो जाय.

हे मुनीश्वर! यह चित्त बहुत चंचल है, स्थिर क
दाचित् नहीं होता, जैसे अग्निमें डार दिया पारा उड
जाता है, तैसे चित्त भी स्थिर नहीं होता, विषयकी
तरफ सदा धावता है, तातें सोई उपाय कहौ, जिसकर
चित्त स्थिर होवै; औ संसाररूपी वनमें भोगरूपी सर्प

हैं, सो जीवका दंश करते हैं; तिससों वचनेका
य कहो, अरु जेती कछु क्रिया हैं, सो रागद्वेषके
मिली हुई है, तातें सोई उपाय कहो जिसकर
द्वेषका प्रवेश न होवै; जैसे समुद्रमें परे होय, अरु
का स्पर्श न होय, तैसे यह संसारमे है, तिसकों
ारूपी जलका स्पर्श न होय, ऐसा उपाय कहो;
कर इसको रागदोषका स्पर्श न होय; अरु मनमें
पननरूपी सत्ता है, सो युक्तिसोंकर दूर होती है,
यथा दूर नहीं होती. सो निवृत्तिके अर्थ आप मेरेकों
ह कहो, औ आगे जिसको जिस प्रकार निवृत्ति
है, सो कहो, अरु जिस प्रकार तुमारे अंतरमें शीत-
ा हुई है, सो कहो. हे मुनीश्वर! जैसे तुम जानते
सो कहो; अरु जो तुमारे विद्यमान वह युक्ति नहीं
, तब मैं तो कछु नहीं जानता, तौ मैं सब त्यागकर
रहंकार होय रहोगा; जबलग उह युक्ति मुझकों न
त होवैगी तबलग मै भोजन नहीं करोंगा, अरु ज-
ान भी नहीं करोंगा अरु स्नानादिक क्रिया भी न-
करोंगा, संपदाका कार्य भी नहीं करोंगा औ आ-
दाका कार्य भी नहीं करोंगा, निरहंकार होऊंगा,
ो ये न मेरा देह है, औ न मैं देह हो, सब त्याग क-
के वैठी रहोंगा, जैसे कागदके उपर मूर्ति चित्रित हो-
ो है, तैसे होय रहोंगा; श्वास आवते जाते आप नहीं

क्षीण होय जायेंगे; जैसे तेलविना दीपक बूझता है, ऐसे अनर्थविन देह निर्वाण होय जायगा, तब तिकों प्राप्त होऊंगा.

वाल्मीक उवाच—हे भारद्वाज! ऐसे कहि रामजी चुप होय रहे; जैसे बडे मेघकों देखके मोर शब्द करके चुप हो जाता है.

इति श्रीयोगवासिष्ठे वैराग्यप्रकरणे अनन्यत्योगदर्शनं नाम षड्विंशतितमः सर्गः ॥ २६ ॥

सप्तविंशतितमः सर्गः २७.

अथ देवसमाजवर्णनं

वाल्मीक उवाच—हे पुत्र! जब इस प्रकार रघुवंशरूपी आकाशके रामचंद्ररूपी चंद्रमा बोले, तब सब ही मौन हो गये; अरु सबके नयन खडे हो गये; मानें रोमहु खडे होकर रामजीके वचन सुनते हैं! अरु जेते कछु सभामें बैठे थे, तो सब निर्वासनारूपी अमृतके समुद्रमें मग्न हो गये; वसिष्ठ, वामदेव, विश्वामित्र, आदि जो मुनीश्वर थे; और जेते दृष्टि आदिक जो मंत्री थे, और राजा दशरथ अरु जेते मंडलेश्वर थे, और जेते चाकर नोकर थे, और माता कौसल्या आदिक सब मौन हो गये, अर्थ यह जो अचल हो गये हैं; अरु पिंजरेमें जो तोते थे, सो भी मौन हो गये; अरु

गीचेमें पशु आदि थे, सो भी मौन हो गये; अरु
ारा तृण खात रही गये; अरु जो पक्षी आलयमें
ठे थे, सो भी सुनकर मौन हो गये, अरु आकाश-
पक्षी जो निकट थे, सो भी स्थिर हो गये, अरु
आकाशमें देव, सिद्ध, गंधर्व, विद्याधर, किन्नर थे,
ो भी आय सुनने लगे, फूलकी वर्षा करने लगे,
व धन्य धन्य शब्द करने लगे। औ फूलकी वर्षा
भई सो मानौ बरफकी वर्षा होती है, अरु क्षीरसमुद्रके
रंग उछलते आते होय, अरु मानौ मोतीकी माला-
की वृष्टि आवत होय, औ जैसे माखनके पिंड उडते
होय, इस प्रकार आधी घडीपर्यंत फूलकी वर्षा भई;
अरु बडी सुगंध आय प्रसरी, अरु फूलपर भौंरे फिरने
लगे। औ बडा विलास तिस कालमें हो रह्या; अरु
नमोनमः शब्द करने लगे

देव उवाच—हे कमलनयन रघुवंशी! आकाशमें
चंद्रमारूप आप रामजी! तुम धन्य हौ! तुमने बडे श्रे-
ष्ठ स्थान देखे हैं, अरु बहुत प्रकारके वचन सुने हैं, या-
तें जैसे आप वचन कहे हैं, ऐसे वचन कबहु नहीं सुने;
यह वचन सुनके हमारा जो देवताका अभिमान था,
सो सब निवृत्त भया है; अमृतरूपी वचन सुनकर हमा-
री बुद्धि पूर्ण हो गई है. हे रामजी! जैसे वचन तुमने
कहे हैं, ऐसे वचन बृहस्पतिहु कहेनेकों समर्थ नहीं; तु-

मारे वचन परमानंदके करनहारे हैं, तातें तुम धन्य हो।
इति श्रीयो० वै० देवसिद्धसमा० सप्तविंशतितमः सर्गः॥२

अष्टाविंशतितमः सर्गः २८.

अथ मुनिसमाजवर्णनं

वाल्मीक उवाच–हे भारद्वाज! ऐसे वचन सि
कहीके विचार करत भये; रघुवंशका कुल पूजवे यो
हैं; तिसमें रामजीनें बडे उदार वचन मुनीश्वरके वि
मान कहे हैं, अब जो मुनीश्वरका उत्तर होयगा,
भी श्रवण किया चाहिये; जैसे फूलके उपर भौंरे स्थि
होते हैं, तैसे व्यास, नारद, पुलह, पुलस्त्य, आदि
साधु सभामें स्थित भये, तब वसिष्ठ विश्वामित्र आदि
नीश्वर उठके खडे हुए, अरु तिनकी पूजा करने ल
प्रथम पूजा राजा दशरथनें करी, फिर, नानाप्रकार
सबने वाकी पूजा करी; औ यथायोग्य आसनके उ
बैठे; सो कैसे हैं जो नारद बहुत सुंदर मूर्तिवारे हा
वीना लेयके बैठे, अरु श्याममूर्ति व्यासजी आय
औ नानाप्रकारके रंगसों रंजित वस्त्र पहिरे हुए मा
तारामें महाश्याम घटा आई है ऐसे; अरु दुर्वासा,
मदेव, पुलह, पुलस्त्य, अरु बृहस्पतिके पिता अंगि
अरु भृगु, औ मैंहु तहां था; औ ब्रह्मर्षि, राजर्षि,
वर्षि, देवता, मुनीश्वर सब आयके सभामें स्थित हु

किसीकों बडी जटा है; कोइनें मुगुट पहरे हैं, किसीनें रुद्राक्षकी माला पेहरी है, किसीनें मोतीकी माला पेहरी है; किसीके कंठमें रत्नकी माला है; औ हाथमें कमंडलु, मृगछाला, किसीके महासुंदर वस्त्र; किसीकी कटिपैं कौपीन, किसीकी कटिपैं सुवर्णकी जंजीर ऐसे बडे तपस्वी आयके बैठे; तामें केउ राजसी स्वभावके, केउ सात्विक स्वभावके; ऐसे बडे बडे आये; अरु सब विद्वत् वेद पढनहारे प्राप्त हुए; औ किसीका सूर्यवत्, किसीका चंद्रमावत्, किसीका तारावत्, किसीका रत्नवत् तेज था, ऐसे बडे प्रकाशवारे पुरुपार्थपर यत्न करनेहारे, सो यथायोग्य आसनपें स्थिर भये, औ मोहनी मूर्ति रामजी दीन स्वभाववारे हाथ जोरके सभामें बैठे, तिसकी सब पूजा करत भये; कहत हैं जो हे रामजी ! तुम धन्य हो ! औ.

नारद सबके विद्यमान कहत भये, जो हे रामजी ! तुमने बडे विवेक अरु वैराग्यके वचन कहे, सो सबकों प्यारे लगे; सबके कल्याण करनेहारे हैं; औ परम बोधके कारण हैं. हे रामजी ! तुम बडे बुद्धिवान् उदारात्मा दृष्टि आवते हो; अरु महावाक्यका अर्थ तुमसें प्रकट होता है; ऐसा उज्ज्वल पात्र साधुमें औ अनंत तपसीमे कोउक होते हैं, अरु जेते कछु मनुष्य है, सो सब पशु जैसे दृष्टिमें आवते हैं; क्यों जो जिसको संसा-

रससमुद्रके पार होनेकी इच्छा है औ जो पुरुषार्थपर यत्न करते हैं, सोई मनुष्य हैं, साधो! वृक्ष तौ बहुत होते हैं, परंतु चंदनका वृक्ष कोउ होता है; तैसे शरीरधारी बहुत हैं, परंतु ऐसा कोउ होता है; औ सब अस्थि मांस रुधिरके पुतले साथ मिले हुए भटकते फिरते हैं; सो जैसी यंत्रिकी पूतरी होती है, तैसे अज्ञानी जीव हैं; औ हस्ती तौ बहुत हैं; परंतु जिसके मस्तकमेंतें मोती निकसता है सो विरला है; तैसे मनुष्य तो बहुत हैं, परंतु पुरुषार्थपर यत्न करनेहारे कोउ होते हैं. जैसे वृक्ष बहुतेरे हैं परंतु लवंगका वृक्ष कोउ होता है, तैसे मनुष्य बहुत हैं परंतु ऐसा कोइ विरला होता है, ऐसे पात्रकों थोरा अर्थ कहा भी बहुत हो जाता है, जैसे तेलकी बूंद थोरी जलमें डारी विस्तारकों पावती है; तैसे थोरे बचन जो आपके हियेमें बहुत होते हैं; आपकी बुद्धि बहुत विशेष है; अरु दीपक जैसी प्रकाशवारी है, अरु बोधका परम पात्र है, औ कहनेंमात्रतें आपकों शीघ्र ज्ञान होवैगा अरु जो हम सब बैठे हैं, सो हमारे विद्यमान आपकों ज्ञान न होवैगा, तब जानना जो हम सब मूर्ख बैठे हैं.

इति श्रीयो० वै० मुनिसमाज०नाम अष्टाविंशतितमः सर्गः२८

समाप्तमिदं योगवासिष्ठे वैराग्यप्रकरणम् ॥ १ ॥

श्रीपरमात्मने नमः

अथ श्रीयोगवासिष्ठ.

मुमुक्षुप्रकरण—प्रारंभः

प्रथमः सर्ग. १.

अथ शुकनिर्वाणवर्णन

वाल्मीक उवाच—हे साधो! यह जो वचन हैं, सो परमानंदरूप हैं; अरु कल्याणके कर्त्ता हैं. इसमें श्रवणकी प्रीति तब उपजती है, जब अनेक जन्मके बडे पुण्य आय इकट्ठे होते हैं; जैसे कल्पवृक्षके फलको बडे पुण्यसों पाते हैं, तैसे जिसके बडे पुण्यकर्म इकठे आय होते हैं, तिसकी प्रीति यह वचनके श्रवणमें होती है; अन्यथा प्रीति नही होती, यह वचन परम बोधके कारण हैं, वैराग्यप्रकरणके एक सहस्र पांचसौ श्लोक हैं, ते भारद्वाज! इस प्रकार जब नारदजीनें कहा, तब विश्वामित्र बोले.

विश्वामित्र उवाच—हे ज्ञानवानमें श्रेष्ठ रामजी! जेता कछु जानने योग्य था सो तेंने जान्या है, इसतें जानना और नहीं रह्या, अरु तिसमें विश्राम पावने

निमित्त कछुक मार्जन करना है; जैसे अशुद्ध आदर्शकी मलिनता दूर करी होय, तब मुख स्पष्ट भासता है; तैसे कछु उपदेशकी तुझकों अपेक्षा है. हे रामजी! तेरे जैसा भगवान् व्यासजीका पुत्र शुकदेवजी भया है सो भी वडा बुद्धिवान् था, तिसनें जो जानने योग्य था सो जान्या है, अरु विश्रामके निमित्त तिसकों भी अपेक्षा थी, सो विश्रामकों पायकर शांतिवान् भया है.

राम उवाच—हे भगवन्! शुकजी कैसा बुद्धिवान् अरु ज्ञानवान् था; अरु कैसी विश्रामकी अपेक्षा तिसकों थी, फिर कैसे विश्रामको पावत भया, सो कृपा करिके कहौ.

विश्वामित्र उवाच—हे रामजी! अंजनके पर्वतकी नांई जिसका आकार है, ऐसे जो भगवान् व्यासजी, सो स्वर्णके सिंहासनपर राजा दशरथके पास यहां बैठा है, अरु सूर्यकी नांई प्रकाशवान जिसकी कांति है, तिसका पुत्र शुकजी था सो सब शास्त्रका वेत्ता था; सत्यकों सत्य जानता था, असत्यकों असत्य जानता था, सो शांतिरूप, औ परमानंदरूप आत्मामें विश्राम न पावत भया, तब उसकों विकल्प उठ्या जो जिसकों मैं जान्या है, सो न होवैगा; काहेतें जो मुझकों आनंद नहीं भासता, सो संशयकों धरके एक कालमें व्यासजी

सुमेरु पर्वतकी कंदरामें बैठे थे, तिनके निकट आयकर कहत भया. हे भगवन् ! यह संसार सब भ्रमात्मक कहांसें भया है; वाकी निवृत्ति कैसे होयगी; औ आगे कोईकों इसकी निवृत्ति भई है ? सो कहो.

हे रामजी ! इस प्रकार जब शुकजीनें कह्या, तब विद्वद्वेदशिरोमणि जो वेदव्यासजी है सो तत्काल उपदेश करत भये; तब शुकजीनें कह्या, हे भगवन् ! जो कछु तुम कहो हौ, सो तौ मै आगेसों जानता हौ, इसकर मुझकों शांति प्राप्त नहीं होती.

हे रामजी ! जब इस प्रकार शुकजीनें कह्या, तब सर्वज्ञ जो वेदव्यासजी हैं सो विचार करत भये, जो मेरे वचनकर इसकों शांति प्राप्त न होवैगी, क्यौं जो इसकों अब पितापुत्रका संबंध भासता है; ऐसे विचार करके व्यासजी कहत भये, हे पुत्र ! मैं सर्वतत्त्वज्ञ नहीं, तूं राजा जनकके निकट जा, वे सर्वतत्त्वज्ञ है, अरु शांतात्मा हैं, उससों तेरा मोह निवृत्त होवैगा.

हे रामजी ! जब इस प्रकार व्यासजीनें कह्या; तब शुकदेवजी उहांसों चले; तब जो मिथिला नगरी राजा जनककी थी, तिसमे आयकर राजा जनकके द्वारपें स्थित भये तब ज्येष्टीनें जायकर जनककों कह्या, जो व्यासजीके पुत्र शुकजी आय खडे हैं; तब राजानें जान्या, जो इसकों जिज्ञासा है, तब कह्या खडा रहो;

तव खडेही रहे; इसी प्रकार ज्येष्टीनें जाय कहा, तब सात दिन खडे रहत वीत गये, तव राजानें फेर पूछ्या जो शुकजी खडे हैं ? कै. चलते रहे हैं ? तव ज्येष्टीनें कहा खडे हैं; तव राजानें कहा आगे ले आओ, तब आगे ले आये; उस दरवज्जेपें भी सात दिन खडे रहे; वहुरि राजानें पूछ्या, जो शुकजी है ? तव ज्येष्टीनें कहा जो खडे हैं; तव राजानें कह्या अंतःपुरमें ले आओ; उसकों नानाप्रकारके भोग भुगताओ; तव अंतःपुरमें ले गये, उहां स्त्रीयनके पास सात दिन खडे रहे, तव राजानें ज्येष्टीकों पूछ्या, जो तिसकी दशा कैसी है, औ आगे कहा दशा थी ? तव ज्येष्टीनें कहा जो आगे निरादर करके न शोकवान् हुआ था, अरु अब भोगकर न प्रसन्न हुआ है; इष्ट अनिष्टमें समान हैं; जैसे मंद पवनकरके मेरु चलायमान नहीं होवै, तैसे यह वडा भोगके आदरकर चलायमान नहीं भये; जैसे पपैयेकों मेघके जलविना नदी, ताल, आदिके जलकी इच्छा नहीं होती, तैसे उसकों किस पदार्थकी इच्छा नहीं; तव राजानें कह्या, इहां ले आओ, तव सो ले आये.

जव शुकजी आये तव राजा जनक उठके खडे होय प्रणाम किया, फिर दोउ बैठ गये; तव राजानें कह्या जो हे मुनीश्वर ! तुम किस निमित्त आये हो; तुमकों

कहा वांछा है, सो कहो; तिसकी प्राप्ति मैं कर देहुं.

श्रीशुक उवाच—हे गुरु! यह संसारका आडंबर कैसे उत्पन्न हुआ हैं, फिर कैसे शांत होवेगा, सो तुम कहो.

विश्वामित्र उवाच—हे रामजी! जब इस प्रकार शुकदेवजीनें कहा, तब राजा जनकनें यथाशास्त्र उपदेश जो कछु व्यासजीने कह्या था; सोई कह्या. बहुरि शुकजीनें कह्या, हे भगवन्, जो कछु तुम कहो हो, सोई मेरा पिताजी कहता था, अरु सोई शास्त्र कहत हैं, औ विचारसों मैं हूं ऐसा जानता हों, जो यह संसार अपने चित्तमें उत्पन्न होता है, अरु चित्तका निर्वेद हुवे भ्रमकी निवृत्ति होती है, फिर विश्राम मुझको नहीं प्राप्त होता है.

जनक उवाच—हे मुनीश्वर! जो कछु मैने कह्या है, अरु जो तुम जानते हो, इसतें अवर उपाय कछु है ऐसा जानना नहीं, अरु कहना भी नहीं; यह संसार चित्तके संवेदनकर हुआ है, जब चित्त फुरनेते रहित होता है, तब भ्रम निवृत्त हो जाता है, अरु आत्मतत्त्व नित्यशुद्ध है, अरु परमानंदस्वरूप है, केवल चैतन्य है; तिसका अभ्यास करेगा, तब तूं विश्रामकों पावैगा; अरु तूं मुक्तिस्वरूप है, काहेते जो तेरा यत्न आत्माकी ओर है, दृश्यकी ओर नहीं, तातें तूं बडा उदा-

स्वभावतेंई ज्ञानवानकी विषयवासना चलती हैं; जैसे सूर्यके उदय हुए अंधकारका अभाव हो ता है; तैसे रामजीकों अब किसी भोगपदार्थकी.२ रही नहीं; अब विदितवेद हुआ है; अब आप मकी इच्छा चाहता है, तातें जो कहौं, सोई करौ जिसकर विश्रामवान् होय.

हे राजन् ! यह जो भगवान् वसिष्ठजी हैं, इनकी युक्ति करके शांत होवैगा; अरु आगे भी सोई रघुवंशकुलके गुरु हैं; इनके उपदेशद्वारा आगे भी रघुवंशी ज्ञानवान् भये हैं; जो सर्वज्ञ हैं, अरु साक्षिरूप हैं, औ त्रिकालज्ञ हैं, औ ज्ञानके सूर्य हैं, इनके उपदेशकर रामजी आत्मपदकों प्राप्त होवैगा.

हे वसिष्ठजी ! वह ब्रह्माका उपदेश तुमारे स्मरणमें है, क्यों जो जब तुमारा हमारा विरोध हुआ था तब उपदेश किया; और जो सब ऋषीश्वर अरु वृक्षकरि पूर्ण है ऐसा जो मंदराचल पर्वतमे आयकर ब्रह्माजीनें संसारवासनाके नाशनिमित्त उपदेश किया था, अरु तुमारा हमारा विरोध था, तिसके निमित्त अरु और जीवके कल्याणनिमित्त जो उपदेश किया था; अब यही उपदेश तुम रामजीको करौ; यह भी निर्मल ज्ञानपात्र है; अरु ज्ञान भी वही है, अरु विज्ञान भी वही है; अरु निर्मल युक्ति वही है, जो शुद्ध पात्रमें अर्पण होवे; अरु

त्रविना उपदेश नहीं सुहात है, अरु जिसमें शिष्य-
ाव न होवै, अरु विरक्तता न होवै, ऐसा जो अपात्र
ूर्ख होवै, तिसकों उपदेश करना व्यर्थ है; अरु जो
िरक्त होवै, अरु शिष्यभावना न होवै, तब भी उपदेश
हीं करना, अरु दोनोंकरि संपन्न होवै, तब करना;
ात्रविना उपदेश व्यर्थ होता है; अर्थ यह जो अपवित्र
ो जाता है; जैसे गौका दूध महापवित्र है, अरु श्वा-
की त्वचामें डारिये, तब वह अपवित्र हो जाता है,
से अपात्रकों उपदेश करना व्यर्थ है. हे मुनीश्वर!
ो शिष्य वैराग्यकरि संपन्न होता है, अरु उदार आ-
मा है, सो तुमारे उपदेशके योग्य है; अरु तुम कैसे हौ;
ो वीतराग हौ; भय अरु क्रोधतें रहित हौ; परम शां-
तिरूप हौ, सो तुमारे उपदेशका पात्र रामजी है.

वाल्मीक उवाच—इस प्रकार जब विश्वामित्रनें कहा; तब नारद अरु व्यासादिकननें साधु! साधु! करके कहा, अर्थ यह जो भला! भला! कहा; ऐसेहीं यथार्थ है. तब राजा दशरथके पास बडे प्रकारके साधु बैठे हुए थे.

वसिष्ठ उवाच—ब्रह्माजीके पुत्र वसिष्ठजीनें तिनकों कह्या जो, हे मुनीश्वर! जो कछु तुमने आज्ञा करि है, सो हमनें मानी है; ऐसा समर्थ कोउ नहीं, जो संतकी आज्ञा निवारण करै. हे साधु! जेते कछु राजा

दशरथके पुत्र हैं, तिन सबके हृदयमें जो अज्ञ तम है; सो मैं ज्ञानरूपी सूर्यकर निवारण करौंगा; सूर्यके प्रकाशकर अंधकार दूर होता है. हे मुनीश्वर, जो कछु ब्रह्माजीनें उपदेश किया था, सो मुझकों अखंड स्मरण है, सोई उपदेश करौंगा, जिसकर रा मजी निःसंशय पदकों प्राप्त होवैगा.

वाल्मीक उवाच—इस प्रकार वसिष्ठजीनें विश्वा मित्रकों कह्या, ताके अनंतर, मोक्षका उपाय सब रा मजीकों कहत भया.

इति श्रीयोगवासिष्ठे मुमुक्षुप्रकरणे विश्वामित्रोपदेशो नाम द्वितीयः सर्गः ॥ २ ॥

तृतीयः सर्गः ३.

अथ असंख्यसृष्टिप्रतिपादनवर्णनं.

वसिष्ठ उवाच—हे रामजी! जो कछु जो ब्रह्माजी तिसनें मुझकों जीवके उपदेश किया है, सो भले प्रकार मेरे स्मरणमें आत है, सो अब तुझकों कहता हौं.

श्रीराम उवाच—हे भगवन्! कछुक प्रश्न करनें का अवसर आया है; अब एक संशयकों दूर करौ मोक्ष उपाय जो संहिता कहते हौ, सो सब तुम कहोगे

परंतु यह जो तुमनें कह्या, जो शुकदेवजी विदेहमुक्त हो गये, तौ भगवान् व्यासजी जो सर्वज्ञ हैं, सो विदेहमुक्त क्यों न हुवे ?

वसिष्ठ उवाच—हे रामजी! जैसे सूर्यके किरणसौं त्रसरेणु उडत दीख परती हैं, तिनकी संख्या कछु नहीं होती, तैसे परम सूर्यके संवेदनरूपी किरणमें त्रिलोकीरूपी त्रसरेणु हैं, सो असंख्य है; औ अनंत होकर मिट जाते हैं; अरु और अनंत होते हैं; अनंत त्रिलोकी ब्रह्मसमुद्रमें होवेगी; तिसकी संख्या कछु नहीं.

श्रीराम उवाच—हे भगवन्! जो आगे व्यतीत हो गये हैं; और आगे जो होवेंगे, तिनकी संख्या केती है? अरु वर्तमानकों तौ जानता हौ.

वसिष्ठ उवाच—हे रामजी! अनंत कोटि त्रिलोकीके गण उपजे हैं, अरु मिट गये हैं, अरु केई होवे हैं अरु केई होवेंगे, गिननेकी संख्या कछु नहीं, काहेतें जो जीव असंख्य हैं; अरु जीव जीव प्रति अपनी अपनी सृष्टि हैं; जब यह जीव मृतक हो जाते हैं, तब उसी स्थानमें अपने अंतवाहक संकल्परूपी पुरविषे इसका बंध भास आता है; अरु इसी स्थानमे परलोक भास आता है, पृथ्वी, आप, तेज, वायु, आकाश, पंच भूत भासता है; अरु नानाप्रकारकी वासनाके अनुसार अपनी अपनी सृष्टि भास आती है; बहुरि जब उहांते मृतक होता है,

तब उही सृष्टि भास आती है; नामरूपसंयुक्त उही
अत सत्य होकर भास आती है, बहुरि जब उहांतें ..
ता है, तब इस पंचभूतसृष्टिका अभाव हो जाता
औ अवर भासती है; अरु तहांके जो जीव होते
तिनकों भी इसी प्रकार अनुभव होता है; इसी प्रकार
एक एक जीवकी सृष्टि होती है, अरु मिट जाती है
तिसकी संख्या कछु नहीं; तब ब्रह्माकी
संख्या कैसे होवै?

जैसे पुरुष फेरी लेता है, अरु तिसकों सर्व
भ्रमते दृष्ट आवते हैं अरु जैसे नौकामें बैठे हुए नदी
तटके वृक्ष चलते दृष्ट आते हैं; जैसे नेत्रके दोषकर आ
काशमें मोतीकी माला दृष्ट आती है; जैसे स्वप्नमें सृ
ष्टि भासती है; तैसे जिवकों भ्रम करके यह लोक पर
लोक भासते हैं; वास्तवतें जगत् कछु उपजाई न
एक अद्वैत परमात्मतत्त्व अपने आपविषे स्थित है;
सविषे द्वैतभ्रम अविद्याकरके भासता है; जैसे बा
कों अपने परछैयामे बैताल भासता है, अरु भय
पावता है तैसे अज्ञानीकों अपनी कल्पना जगत्रूप
होय भासती है.

हे रामजी! यह व्यासदेव बत्तीस बेर मेरे देखनेमे
आया है, तिसमें दश तो एक आकाररूप हैं; अरु एक
हीं जैसे किया, अरु एकहीं जैसे निश्चय हुआ है; अरु

अवर दश समानहीं सम हुवे हैं; अरु बारे विलक्षण आकार, विलक्षण क्रिया चेष्टावाले हुवे हैं; जैसे समुद्रमें तरंग होते हैं, तामें केई सम अरु केई विलक्षण उपजते हैं, सें व्यास हुवे हैं; अरु सम जो दश हुवे हैं, तिनमें दशम व्यास यही है; अरु आगे भी अष्ट वेर यही होवैगा; बहुरि महाभारत कहैगा; बहुरि नौमी वेर ब्रह्मा होकर विदेहमुक्त होवैगा; अरु हम भी होवैंगे, अरु वाल्मीक भी होवैगा, भृगु भी होवैगा, अरु बृहस्पतिका पिता अंगिरा भी होवैगा, इत्यादिक अवर भी होवेंगे.

हे रामजी! एक सम होते हैं, एक विलक्षण होते हैं; अरु मनुष्य, देवता, तिर्यगादिक जीव केई वेर समान होते हैं; केई वेर विलक्षण होते हैं, केई जीव समान आकार आगे जैसे कुलक्रियासहित होते हैं, अरु केई संकल्पकर उडते फिरते हैं; आनां, जानां, जीनां, मरनां, स्वप्नभ्रमकी नाई दिखता है; अरु वास्तवतें कोउ न आता है, न जाता है, न मरता है; यह भ्रम अज्ञानसों कर पडा भासता है, विचार कियेते कछु निकसता नहीं; जैसे कदलीका स्तंभ देखनेमें वडा पुष्ट आता है, फिर खोद देखो तो सार कछु नहीं निकसता! तैसे जगद्भ्रम अविचारतें सिद्ध है; विचार कियेतें कछु भासता नहीं.

हे रामजी! जो पुरुष आत्मसत्तामे जग्या है, तिसकों द्वैतभ्रम नहीं भासता है; उह आत्मदर्शी, सदा

शांतात्मा, परमानंदस्वरूप है; अरु सब कलनातें र
है, ऐसे जीवन्मुक्तकों कोई चलाय नहीं सकता;
जो व्यासदेवजी हैं, तिनकों सदेहमुक्ति, अरु विदेहमु
क्तिकी कोउ कलना नहीं; सदा अद्वैतरूप है; हे रा
मजी! जीवन्मुक्तिकों सर्वत्र सर्वात्मा पूर्ण भासता है;
अरु स्वस्वरूप है, स्वरूपसार शांतिरूप अमृतकरि
पूर्ण है, अरु निर्वाणमें स्थित है.

इति श्रीयोगवासिष्ठे मुमुक्षुप्रकरणे असंख्यसृष्टिप्रतिपादनं
नाम तृतीयः सर्गः ॥ ३ ॥

चतुर्थः सर्गः ४.

अथ पुरुषार्थोपक्रमवर्णनं



वसिष्ठ उवाच—हे रामजी! जीवन्मुक्ति अरु वि
देहमुक्तिमे भेद कछु नहीं; जैसे स्थिर जल है, तौ भी
जल है, अरु तरंग फिरते हैं, तौ भी जल है; तैसे जी
वन्मुक्ति अरु विदेहमुक्तिमें भेद कछु नहीं. हे रामजी
जीवन्मुक्ति अरु विदेहमुक्तिका अनुभव तुझकों प्रत्यक्ष
नहीं भासता, काहेतें जो स्वसंवेद्य है; अरु तिनमें जो
भेद भासता है, सो असम्यक्दर्शीकों भासता है, ज्ञा
नवानकों भेद कछु नहीं भासता है. हे मननहारीविषे
श्रेष्ठ रामजी! जैसे वायु स्पंदरूप होता है तौ भी वायु

हैं; अरु निस्पंदरूप होता है तो भी वायु है; उसके चा-येतें निश्चयविषे भेद कछु नहीं; पर अवर जीवकों स्पंद होती है, तौ भासती है; अरु निस्पंद होती है, तौ नहीं भासती है; तैसे ज्ञानवान् पुरुषकों जीवन्मुक्ति अरु विदेहमुक्तिमें भेद कछु नहीं; उह सदा द्वैतकलना-तें रहित हैं; जब जीवकों उसका शरीर भासता है तब जीवन्मुक्त कहते हैं; जब शरीर अदृश्य होता है, तब विदेहमुक्ति कहते हैं; अरु उसकों दोई तुल्य हैं.

हे रामजी ! अब प्रकृत प्रसंगकों सुन, जो श्रवण-का भूषण है, जो कछु सिद्ध होता है, सो अपने पुरु-षार्थकर सिद्ध होता है; पुरुषार्थविना सिद्धि कछु नहीं होती; और कहते हैं जो दैव करेगा सो होवैगा, सो मूर्खता है; इह चंद्रमा हृदयकों शीतल अरु उल्लासक-र्त्ता भासता है, सो इसमें शीतलता पुरुषार्थकरि हुई है. हे रामजी ! जिस अर्थकी प्रार्थना करै, अरु यत्न करै, अरु तिसमें फिरै नहीं तौ अविस्मयकर जरूर पाता है.

औ पुरुषप्रयत्न किसका नाम है, सो श्रवण कर. संतजन अरु सत्यशास्त्रके उपदेशरूप उपायकर तिस-के अनुसार चित्तका विचरना होय सो पुरुषार्थप्रय-त्न है, तिसतें इतर जो चेष्टा करता है, तिसका नाम उन्मत्त चेष्टा है; अरु जिसनिमित्त यत्न करता है सोई पावता है; एक जीव था, सो पुरुषार्थ प्रयत्न

करत अपुन इंद्रकी पदवी पाई त्रिलोकीका पति होय सिंहासनपर आरूढ हुवा.

हे रामचंद्र ! आत्मतत्त्वमें जो चैतन्य अस्पंद, इस स्पंदरूप होकर स्फुरता है, सो अपने पुरुषार्थकर ब्रह्माके पदकों प्राप्त भया है; तातें देख, जिसकों कछु सिद्धता प्राप्त हुई सो अपने पुरुपार्थकर हुई है; केवल चैतन्य जो आत्मत्त्व है, तिसमें चित्तसंवेदन स्पंदरूप यह चैतन्यसंवेदन अपने पुरुपार्थ करके गरुडपर आरूढ होय विष्णुरूप होता है; अरु पुरुपोत्तम कहाता है; अरु यह चैतन्यसंवेदन अपने पुरुपार्थ करके रुद्ररूप भया है, अरु अर्धागमें पार्वतीको धरी रह्या है, अरु मस्तकमें चंद्रमाकों धऱ्या है,अरु नीलकंठ परमशांतिरूप है, तातें जो कछु सिद्ध होता है सो पुरुपार्थकर होता है.

हे रामजी ! पुरुषार्थ करके सुमेरुका चूर्ण किया चाहे, तौ भी कर शकता है; जैसे पूर्व दिनमें दुष्कृत किया होय, अरु अगले दिनमें सुकृत करै तब दुष्कृत दूर हो जाता है; जो अपने हाथद्वारा चरणामृत भी ले नहीं शकता, सो पुरुषार्थ करै तौ वही पृथ्वी खंड खंड करनेकों समर्थ होता है.

इति श्रीयोगवासिष्ठे मुमुक्षुप्रकरणे पुरुषार्थोपक्रमो नाम चतुर्थः सर्गः ॥ ४ ॥

पंचमः सर्गः ५.

अथ पुरुषार्थवर्णनं

वसिष्ठ उवाच– हे रामजी! जो चित्तमें कछु चांग्र करता है, अरु शास्त्रके अनुसार पुरुषार्थ नहीं करता, सो सुखकों न पावैगा; उसकी उन्मत्त चेष्टा है; अरु पुरुषार्थ भी दो प्रकारका है; एक शास्त्रानुसार है, एक शास्त्रविरुद्ध है; जो शास्त्रकों त्याग करी अपनी इच्छाके अनुसार विचरता है, सो सिद्धताकों न पावैगा; अरु जो शास्त्रके अनुसार पुरुषार्थ करता है, तिसकर सो सिद्धताको प्राप्त होवैगा, अरु दुःख भी न होवैगा; जो अनुभवतें स्मरण होता है; अरु स्मरणतें अनुभव होता है; सो दोनों इसहीतें होते हैं, दैव तो कछु न हुआ है.

हे रामजी! अवर दैव कोउ नहीं, इसका किया इसकों प्राप्त होता है, परंतु जो बलिष्ठ होता है सो तिसके अनुसार विचरता है; जो पूर्वके संस्कार बली होते हैं, तो उसका जय होता है अरु जो विद्यमान पुरुषार्थ बली होते हैं, तब उसकों जीती लेते हैं, जैसे एक पुरुषके दो घेटे हैं, अरु जो तिसकों लडावता है, तो दोनोंविषे जो बली है, तिसका जय होता है; परंतु दोनों उसके हैं, तैसे दोनों कर्म इसके हैं, जो पूर्वका संस्कार बली होता है, तोई इसका जय होता है.

हे रामजी! यह जो सत्संग करता है, अरु सत्शास्त्रहुकों विचारता है, बहुरि पक्षीकी नांई संसारवृक्षहुकी ओर उडता है, तौ पूर्वका संस्कार बली है, तिसकरि स्थिर हो नहीं सकता; ऐसे जानीकरि तैंनें पुरुषप्रयत्नका त्याग नहीं करनां; जो पूर्वके संस्कारतें अन्यथा नहीं होता, परंतु पूर्वका संस्कार बली भी होवै, परंतु जब सत्संग करै, अरु सत्शास्त्रहुंका दृढ अभ्यास होवै, तौ पूर्वके संस्कारकों पुरुष प्रयत्नकरि जीत लेता है; जैसे पूर्वके संस्कारमें दुष्कृत किया है, आगे सुकृत किया है तौ अगलेका अभाव हो जाता है; सो पुरुषप्रयत्न है; सो पुरुषार्थ क्या है? अरु तिसकर सिद्ध क्या होता है? सो श्रवण करके ज्ञानवान् जो संत है अरु सत्शास्त्र जो ब्रह्मविद्या है; तिसके अनुसार प्रयत्न करना तिसका नाम पुरुषार्थ है, अरु पुरुषार्थ करके पावनेयोग्य आत्मा है, जिसकरि संसारसमुद्रका पार होवै.

हे रामजी! जो कछु सिद्ध होता है, सो अपने पुरुषार्थकरी होता है; अवर दैव कोउ नहीं; अरु जो शास्त्रके अनुसार पुरुषार्थकों त्याग करी कहता जो जो कछु करना है सो दैव करैगा, सो मनुष्यमें गर्दभ है, तिसका संग न करना, उसकी संगति करनी सो दुःखका कारण है; इस पुरुषकों प्रथम तो यह कर्त्तव्य है, जो अपने वर्णाश्रमविषे शुभ आचारकों ग्रहण करनां, अरु

अशुभका त्याग करनां; वहुरि संतका संग, अरु सत्शास्त्रका विचारनां, औ तिसके विचारकर अपने गुणदोषहुंका विचार करना; जो दिन अरु रात्रमें मैं शुभ क्या करता हौं, अरु अशुभ क्या करता हौं, आगे गुण अरु दोषहुका साक्षीभूत होकर जो संतोष, धैर्य, वैराग्य, विचार, अभ्यास गुण हैं तिनकों वढावनां; अरु दोष विपरीत है, तिनका त्याग करनां; जव ऐसे पुरुषार्थकों अंगीकार करैगा, तव परमानंदरूप आत्मतत्त्वकों पावैगा.

तातें हे रामजी! वनके घाएल हुए मृगकी नांई नहीं होना, जो घास, तृण, पातकों रसीला जानके पच्या चुगता है; तैसे स्त्री, पुत्र, बांधव, धनादिकविषे मग्न हो रहनां, सो नहीं होनां; इनतें विरक्त होनां; दंतहु साथ दंतहुकों चवायकरि संसारसमुद्रकों पार होनेका यत्न करनां; अरु वलतें वंधनकों तोडीकरि निकसी जानां; जैसे केसरी सिंह वलकरके पिंजरेमेतें निकस जाता है, तैसे निकस जानां; सोई पुरुपार्थ है.

हे रामजी! जिसकों कछु सिद्धताकी प्राप्ति हुई है, सो अपने पुरुषार्थ कर हुई है, पुरुषार्थ विना नहीं होती; जैसे प्रकाशविन पदार्थका ज्ञान नहीं होता, जिस पुरुषनें अपना पुरुषार्थ त्याग दिया है; अरु दैवके आश्रय हुए हैं, जो हमारा दैव कल्याण करैगा, सो न होवैगा;

जैसे पथ्थरसों तेल निकस्या चाहै सो नहीं, तैसे उसका कल्याण देवतें न होवैगा. हे रामजी! तुम तो दैवका आश्रय त्यागकर अपने पुरुषार्थका आश्रय करो.

जिसनें अपना पुरुषार्थ त्याग्या है, तिसकों सुंदर कांति लक्ष्मी त्याग जाती है, जैसे वसंतऋतुकी मंजरी वसंतऋतुके गयेतें विरस हो जाती है, तैसे उनकी कांति लघु हो जाती है; जिस पुरुषने ऐसा निश्चय किया है; जो हमारे पालनेहारा दैव है, सो पुरुष ऐसा है, जैसे कोउ अपनी भुजाकों सर्प जानके भय पायके दौरत है, औ जानता नहीं जो अपनी भुजा है, तैसे अपने पुरुषार्थकों त्यागके दैवका आश्रय लेता है, अरु भयकों पावता है.

पुरुषार्थ नाम इसका है, जो संतहुका संग अरु सत्शास्त्रोंका विचार करके तिनके अनुसार विचारनां; अरु जो तिनकों त्यागके अपनी इच्छाके अनुसार विचरते है, सो सुखकों नहीं पावैंगे; न सिद्धताकों पावैंगे; अरु जो शास्त्रके अनुसार विचरते हैं सो इहां भी सुख पावैंगे, अरु आगे भी सुख पावैंगे; तैसेई सिद्धताकों पावैंगे; तातें संसाररूपी जालविषे नहीं गिरनां, सो पुरुषार्थ है; संतजनहुके संग अरु सत्शास्त्रके अर्थ हृदयरूपी पत्रपैं लिखनां; बोधरूपी कानी करनी अरु वि-

ज्ञारूपी स्याही करनी; जब ऐसे पुरुपार्थ करी लिखेगा, तब संसाररूपी जालमें न गिरेगा.

हे रामजी! जैसे यह आदि नेत हुई है, जो पट है, सो पटही है; जो घट है, सो घटही है; घट है सो पट नहीं; औ पट है सो घट नहीं; तैसे यह भी नेत हुई है; अपने पुरुपार्थविना परमपदकी प्राप्ति नहीं होती.

हे रामजी! जो संतहुकी संगति करता है, अरु सत्शास्त्र भी विचारता है; अरु उनके अर्थमें पुरुपार्थ नहीं करता, तिसकरि सिद्धता प्राप्त नहीं होती; जैसे अमृतके निकटई बैठा होवै, अरु पान कियेविना अमर नहीं होता, तैसे अभ्यास कियेविना अमर नहीं होता; औ सिद्धता प्राप्त नहीं होती.

हे रामजी! अज्ञानी जीव अपना जन्म व्यर्थ होते हैं; जब बालक होते हैं, तब मूढ अवस्थामें लीन रहते हैं; अरु युवा अवस्थामें विकारहुकों सेवते हैं; अरु जरामें जर्जरीभूत होते हैं; इसी प्रकार जीवना व्यर्थ होते हैं; अरु जो अपना पुरुपार्थ त्याग करके दैवका आश्रय लेता है सो अपना हंता होते हैं, सो सुखकों नहीं पावेंगे. हे रामजी! जो पुरुप व्यवहारविषे अरु परमार्थ विषे आलसी हुवे हैं, अरु परमार्थकों त्यागिके मूढ हो रहे हैं, सो दीन हुए हैं, मानो पशु हैं; अरु दुःखकों प्राप्त हुवे हैं, यह मैं विचार करके देख्या है; ताते पुरुपार्थका

आश्रय करो; सत्संग अरु सत्शास्त्ररूपी आदर्श
अपने गुण करके दोषकों देखके दोषका त्याग करो;
रु शास्त्रका सिद्धांत जो है तिसका अभ्यास करो; जब
दृढ अभ्यास करोगे, तब शीघ्रही आनंदवान होहुगे.

वाल्मीक उवाच—जब इस प्रकार वसिष्ठजीनें क
हा तब सायंकाल समय हुवा तब सब सभा स्नान
निमित्त उठके खडी भई. परस्पर नमस्कार करके
अपने घरकों गये, बहुरि सूर्यकी किरणहु साथ आय
स्थिर भये.

इति श्रीयोगवासिष्ठे मुमुक्षुप्रकरणे पुरुपार्थवर्णनं नाम पंचमः
सर्गः ॥ ५ ॥

षष्ठः सर्गः ६.

अथ परमपुरुषार्थवर्णनं.

वसिष्ठ उवाच—हे रामजी! इसका जो पूर्व
किया पुरुषार्थ है, तिसका नाम दैव है, अवर दैव
नहीं; जब यह सत्संग अरु सत्शास्त्रकों विचार
करै, तब पूर्वके संस्कारकों जीत लेता है, जो पुरुष इष्ट
पावनेका यह शास्त्रद्वारा यत्न करैगा, सो अवश्यमेव
अपने पुरुषार्थतें फलकों पावैगा; अन्यथा कछु नहीं
होता; न हुवा है, न होवैगा; पूर्व जो कोउ पाप कि

ा होता है, तिसका फल जब दुःख पावता है, तब मूर्ख
हता है जो हाए दैव! हाए दैव! हाए कष्ट! हाए कष्ट!
हे रामजी! इसका जो पुरुषार्थ पूर्वका है, तिसका
ाम दैव है, अवर दैव कोउ नहीं अवर जो कोउ दैव
ल्पते हैं, सो मूर्ख हैं, अरु जो पूर्वके जन्म सुकृत क-
िके आया होता है; उही सुकृत सुख होयके देखाइ
ेता है; जो पूर्वका सुकृत बली होता है तो उसहीका
जय होता है; जो पूर्वका दुष्कृत बली होता है; अरु शु-
भका पुरुषार्थ करता है; सत्संग अरु सत्शास्त्रहुका वि-
चार श्रवण करता है, तौ पूर्वके संस्कारकों जीत लेता
है;जैसे प्रथम दिन पाप किया होवै, दूसरे दिन वडा पुण्य
करै, तौ पूर्वका पाप निवृत्त हो जाता है, तैसे जब इहां
दृढ पुरुषार्थ करै, तौ पूर्वके संस्कारकों जीत लेता है;
तातें जो कछु सिद्ध होता है, सो इसकों पुरुषार्थ करके
सिद्ध होता है; जो एकत्रभावकरि प्रयत्न करनां इसी-
का नाम पुरुषार्थ है; जो जिसका यत्न एकत्रभाव हो-
यके करैगा, सो तिसकों अवश्यमेव प्राप्त होवैगा; जो
पुरुष अवर दैवकों जानके अपना पुरुषार्थ त्यागी बैठा
है, सो दुःखको पावैगा, शांतिवान कबहु न होवैगा.
हे रामजी! मिथ्या दैवके अर्थको त्यागके तुम अप-
ने पुरुषार्थका अंगीकार करौ; जो संतजन अरु सत्शा-
स्त्रहुके वचन अरु युक्तिसाथ यत्न करके आत्मपदकों

अभ्यास करके प्राप्त होनां, इसीका नाम पुरुषार्थ है; प्रकाश करके जैसे पदार्थहुका ज्ञान होता है; तैसे पुरुषार्थकर आत्मपदकी प्राप्ति होती है; जो पूर्वके किये दुष्कृततें वडा पापी होता है, सो इहां दृढ पुरुषार्थ येतें उसकों जीत लेता है; जैसे वडा मेघ होता है, अरु तिसका पवन नाश करता है; अरु जैसे वर्ष दिनहुका क्षेत्र पका होता है, अरु वरफ तिसका नाश कर देता है; तैसे पूर्वका संस्कार पुरुषप्रयत्न करके नाश होता है.

हे रामजी ! श्रेष्ठ पुरुष सोई है, जाने सत्संग अरु सत्शास्त्रद्वारा बुद्धिकों तीक्ष्ण करके संसारसमुद्र तरनेका पुरुषार्थ किया है; अरु जिनहु सत्संग अरु सत्शास्त्रद्वारा बुद्धि तीक्ष्ण नहीं करी, अरु पुरुषार्थकों त्यागी बैठे हैं, सो पुरुष नीचतें नीच गतिकों पावैंगे; अरु जो श्रेष्ठ पुरुष हैं, सो अपने पुरुषार्थ करके परमानंदपदकों पावैंगे, जिसके पायेते वहुरि दुःखी नहीं होता; अरु जो देखने करी दीन होते हैं: अरु सत्संगति अरु सत्शास्त्रके अनुसार पुरुषार्थ करते हैं, सो उत्तम पदवीकों प्राप्त होते दृष्ट आवते हैं. हे रामजी ! जिन पुरुषनें पुरुषप्रयत्न किया है, तिसकों सब संपदा आय प्राप्त होती है, अरु परमानंदकरि पूर्ण हो रहे हैं; जैसे रत्नहूकरि समुद्र पूर्ण है, तैसे उह परमानंद करके पूर्ण

जो श्रेष्ठ पुरुष हैं, सो अपने ७९

कों दृष्ट आता है, अरु सुनता है; सो अपने पुरुषार्थ करि भये हैं; अरु जो महानिष्ठ सर्प कीट आदिक तु-झकों दृष्ट आता है, तिननें अपने पुरुषार्थका त्याग किया है, तब ऐसे हुवे हैं.

हे रामजी ! अपने पुरुषार्थकों आश्रय कर, नहीं तौ सर्पकीटादिक नीच योनीकों प्राप्त होवैगा; जिन पुरु-पनें अपना पुरुषार्थ त्याग्या है, औ किसी दैवका आ-श्रय धर्या है, सो महामूर्ख है, काहेतें जो यह वार्त्ता व्यवहारमें भी प्रसिद्ध है जो अपने उद्यम कियेविना किसी पदार्थकी प्राप्ति नहीं होती; तौ परमार्थकी प्राप्ति कैसे होवै ? तातें दैवकों त्यागकरि संतजन अरु सच्छास्त्रोंके अनुसार यत्न करहु; परमपद पावनेके निमित्त जो दुःखहींतें मुक्त होवहीं. हे रामजी ! जो जनार्दन विष्णुजी हैं, सो अवतार धारिकरि दैत्यहुकों मारता है, अरु अवर चेष्टा भी करता है, परंतु पापका स्पर्श इसकों नहीं होता, काहेतें ने पुरुषार्थ

अष्टमः सर्गः ८.

अथ परमपुरुपार्थवर्णन

वसिष्ठ उवाच—हे रामजी! यह जो दैवशब्द है, सो मूर्खहूनें कल्प्या है, जो दैव हमारी रक्षा करैगा, हमकों दैवका आकार कोउ दृष्ट नहीं आवता, न कोउ दैवका काल है, न दैव कछु करताही है; मूर्ख लोक दैव दैव परे कहते हैं; अवर दैव कोउ नहीं, इसका पूर्वका कर्मही दैव है.

हे रामजी! जिस पुरुपने अपने पुरुपार्थका त्याग किया है, अरु दैवपरायण हुवे हैं; जो हमारा कल्याण करैगा सो मूर्ख है; काहेते जो अग्निविपे यह जाय पडे, अरु दैव इसकों निकासी लेवै, तब जानियें जो कोउ दैव भी है, सो तौ नहीं; अरु जो दैव करता है; तौ इह स्नान, दान, भोजन; आदिहूका त्याग करी तूष्णी होय बैठे; आपेई दैव कर जावैगा; सो भी इसकों किये बिना नहीं होता; ताते अवर दैव कोउ नहीं; अपना पुरुपार्थही कल्याणकर्त्ता है.

हे रामजी! जो इसका किया कछु नहीं होता, अरु दैवही करनेहारा होता; तौ शास्त्र अरु गुरुका उपदेश भी नहीं होता; सो सच्छास्त्रके उपदेश करके अपने पुरुपार्थद्वारा इसको होती है;

कों दृष्ट आता है, अरु सुनता है; सो अपने
करि भये हैं; अरु जो महानिष्ठ सर्प कीट ।
झकों दृष्ट आता है, तिननें अपने पुरुषार्थका त्या
किया है, तब ऐसे हुवे हैं.

हे रामजी ! अपने पुरुपार्थकों आश्रय कर, न
सर्पकीटादिक नीच योनीकों प्राप्त होवैगा; जिन
पनें अपना पुरुपार्थ त्याग्या है, औ किसी दैवका
श्रय धर्या हैं, सो महामूर्ख है, काहेतें जो यह
व्यवहारमें भी प्रसिद्ध है जो अपने उद्यम
किसी पदार्थकी प्राप्ति नहीं होती; तो
प्राप्ति कैसे होवै ? तातें दैवकों त्यागकरि संतजन
सच्छास्त्रोंके अनुसार यत्न करहु; परमपद
निमित्त जो दुःखहीतें मुक्त होवहीं. हे रामजी !
जनार्दन विष्णुजी हैं, सो अवतार धारिकरि
मारता है, अरु अवर चेष्टा भी करता है, परंतु
स्पर्श इसकों नहीं होता, काहेतें जो अपने
करके अक्षयपदकों प्राप्त हुवा है; तुम भी पुरुपार्थक
आश्रय करौ, अरु संसारसमुद्रको तरी जावहु.

इति श्रीयोगवासिष्ठे मुमुक्षुप्रकरणे पुरुपार्थोपमाव
र्णन नाम सप्तमः सर्गः ॥ ७ ॥

अष्टमः सर्गः ८.

अथ परमपुरुषार्थवर्णनं

वसिष्ठ उवाच—हे रामजी! यह जो दैवशब्द है, सो मूर्खहूनें कल्प्या है, जो दैव हमारी रक्षा करैगा, हमकों दैवका आकार कोउ दृष्ट नहीं आवता, न कोउ दैवका काल है, न दैव कछु करताही है; मूर्ख लोक दैव दैव परे कहते हैं; अवर दैव कोउ नहीं, इसका पूर्वका कर्मही दैव है.

हे रामजी! जिस पुरुषनें अपने पुरुषार्थका त्याग किया है, अरु दैवपरायण हुवे हैं; जो हमारा कल्याण करैगा सो मूर्ख है; काहेतें जो अग्निविषे यह जाय पडे, अरु दैव इसकों निकासी लेवै, तब जानियें जो कोउ दैव भी है, सो तौ नहीं; अरु जो दैव करता है, तौ इह स्नान, दान, भोजन; आदिहूका त्याग करी तूर्णी होय बैठे; आपेई दैव कर जावैगा, सो भी इसकों कियेबिना नहीं होता; तातें अवर दैव कोउ नहीं; अपना पुरुषार्थही कल्याणकर्त्ता है.

हे रामजी! जो इसका किया कछु नहीं होता, अरु दैवही करनेहारा होता, तौ शास्त्र अरु गुरुका उपदेश भी नहीं होता; सो सच्छास्त्रके उपदेश करके अप-

तातें अवर जो कोउ दैव शब्द है सो व्यर्थ है; इस भ्रमकों त्यागकरके संत अरु शास्त्रहुके अनुसार पुरुषार्थ करै, तब दुःखहुतें मुक्त होवैगा. हे रामजी! अवर दैव कोउ नहीं; इसका पुरुषार्थ जो है; स्पंद सोई दैव है.

हे रामजी! जो कोउ अवर दैव करनेहारा होता, तौ जब इह शरीरकों त्यागता है, अरु शरीर सब नाश हो जाता है; क्रिया शरीरसो कछु नहीं होती; काहेतें जो चेष्टा करनेहारा त्याग जाता है, जो दैव होता तौ सबी शरीरसों चेष्टा करावता; सो तौ चेष्टा कछु नहीं होती, तातें जानीता है जो दैव शब्द व्यर्थ है. हे रामजी! पुरुषार्थकी वार्त्ता है, सो अज्ञानी जीवहुकों भी प्रत्यक्ष है, जो अपने पुरुषार्थविना कछु होता नहीं; गोपाल भी जानता है जो मैं गैयांकों चराउं नहीं तौ भूखीही रहेगी; तातें अवर दैवके आश्रय बैठी नहीं रहता, आपही चराय ले आता है.

हे रामजी! अवर दैवकी कल्पना भ्रम करके पंरे करते हैं; अवर दैव तौ हमकों कोउ दृष्ट नहीं आता; हस्त, पाद, शरीर, दैवका कोउ दृष्ट नहीं आता, अपने पुरुषार्थकरि सिद्धता दृष्ट आवती है, अरु जो कोउ आकारतें रहित दैव कल्पियें तौ नहीं बनता; काहेतें जो निराकार अरु साकारका संयोग कैसे होवै. हे रामजी! अवर दैव कोउ नहीं, अपना पुरुषार्थही, दैव-

रूप है जो राजा ऋद्धिसिद्धिसंयुक्त भासता है, सो भी अपने पुरुपार्थकरि हुए हैं.

हे रामजी ! यह जो विश्वामित्र हैं, याने दैवशब्द दूरहींतें त्याग किया है; सो भी अपने पुरुषार्थ करके क्षत्रियतें ब्राह्मण हुवे हैं; अरु अवर जो बडे विभूतिमान् हुवे हैं, सो भी अपने पुरुपार्थकरि दृष्ट आवते हैं. हे रामजी ! जो दैव पढेबिना पंडित करै तौ जानियें जो दैवनें किया, सो तो पढेबिना पंडित कहूं नहीं होता; अरु जो अज्ञानीतें ज्ञानवान् होते हैं, सो भी अपने पुरुपार्थकरि होते है, तातें अवर दैव कोउ नहीं, मिथ्या भ्रमकों त्यागकरि संतजन अरु सच्छास्त्रहुके अनुसार संसारसमुद्र तरनेका प्रयत्न करहु; तेरे पुरुपार्थविना अवर दैव कोउ नहीं; जो अवर दैव होता तौ वहुत वेर क्रियावल भी अपनी कियाकों त्यागके सोई रहता, आपे दैवहीं पडा करैगा, सो ऐसे तौ कोउ नहीं करता; तातें अपने पुरुपार्थविना कछु सिद्ध नहीं होता; अरु जो इसका किया कछु न होता तो पाप करनेहारे नरक न जाते, अरु पुण्य करनेहारे स्वर्ग न जाते, परंतु पाप करनेहारे नरकमे जाते हैं, अरु पुण्य करनेहारे स्वर्गमें जाते हे, तातें जो कछु प्राप्त होता है, सो अपने पुरुपार्थकरि होता हे.

हे रामजी ! जो कोउ अवर दैव करता है ऐसा कहे

तिसका शिर काटियें ! ! अरु देवके आश्रय जीवता रहै, तौ जानीयें जो कोउ दैव है; सो तौ जीवता कोउ नहीं, तातें दैवशब्दकों मिथ्या भ्रम जानके संतजन अरु सच्छास्त्रहुके अनुसार अपने पुरुपार्थकरि आत्मपदविपे स्थित होहु.

इति श्रीयोगवासिष्ठे मुमुक्षुप्रकरणे परमपुरुपार्थवर्णनं नामाष्टमः सर्गः ॥ ८ ॥

नवमः सर्गः ९.

अथ परमपुरुपार्थवर्णनं

राम उवाच—हे भगवन् ! सर्व धर्महुंके वेत्ता, तुम कहते हो और दैव कोउ नहीं, परंतु ब्राह्मण भी दैव है ऐसा कहते हैं; औ दैवका किया सब कछु होता है, अरु सुखदुःखकों देनेहारा दैव है, यह लोकविपे प्रसिद्ध है.

वसिष्ठ उवाच—हे रामजी ! मैं तुझकों ऐसे कहता हौ, ज्यों तेरा भ्रम निवृत्त हो जावै, इसहीका कर्म किया हुवा है; शुभ अथवा अशुभ तिसका फल अवश्यमेव भोगना है, सो दैव कहौ; पुरुपार्थ कहौ, अवर दैव कोउ नहीं; अरु कर्त्ता, क्रिया, कर्म आदिकहुविपे तौ दैव कोउ नहीं, अवर कोउ दैवका स्थान नहीं, रूप नहीं तौ अवर दैव क्या कहियें. हे रामजी ! मूर्ख-

हुके परचावने निमित्त दैवशब्द कहा है; जैसे आकाश शून्य है, तैसे दैव भी शून्य है.

राम उवाच—हे भगवन्! सर्व धर्महुके वेत्ता, तुम कहते हो जो अवर दैव कोउ नहीं, सो आकाशकी नाई शून्य है, सो तुमारे कहनेकर भी दैव सिद्ध होता है; तुम कहते हो जो इसके पुरुषार्थका नाम दैव है, अरु जगत्विषे भी दैवशब्द प्रसिद्ध है.

वसिष्ठ उवाच—हे रामजी! मैं ऐसे तुझकों कहता हौं, जिसकरि दैवशब्द तेरे हृदयसों उठि जावै, अर्थ यह जो शून्य हो जावै, दैव नाम अपने पुरुषार्थका है, अरु पुरुषार्थ नाम कर्मका है, अरु कर्म नाम वासनाका है, वासना मनतें होती है, अरु मनरूपी पुरुष है, जिसकी वासना करता है, सोई इसकों प्राप्त होता है, जो गांवकी प्राप्ति होनेकी वासना करता है सो गांवकों प्राप्त होता है; जो पत्तनकी वासना करता सो पत्तनकों प्राप्त होता है; तातें अवर दैव कोउ नहीं; पूर्वका जो शुभ अथवा अशुभ दृढ पुरुषार्थ किया, तिसका परिणाम सुखदुःख अवश्य होता है, औ तिसीकाई नाम दैव है.

हे रामजी! तुम विचारकर देखो जो अपना पुरुषार्थ कर्महुतें भिन्न नहीं तो सुखदुःख देनहारा अरु लेनहारा दैव कोउ नहीं हुवा क्यों? यह जो पापकी

वासना करता है, अरु शास्त्रविरुद्ध कर्म करता है सो किसकरि करता है? पूर्वका जो इसका दृढ पुरुषार्थ कर्म है, तिसकरि यह पाप करता है; अरु जो पूर्वका पुण्य कर्म किया होता है, तौ यह शुभ मार्गविषे विचरता है.

राम उवाच—हे भगवन्! जो पूर्वकी दृढ वासनाके अनुसार यह विचरता है, तौ मैं क्या करों? मुझकों पूर्वकी वासनानें दीन किया है, अब मुझकों क्या कर्तव्य है?

वसिष्ठ उवाच—हे रामजी! जो कछु इसकी पूर्वकी वासना दृढ हो रही है, तिसके अनुसार य. विचरता है; अरु जो श्रेष्ठ मनुष्य है सो अपने पुरुषार्थकरके पूर्वके मलीन संस्कारकों शुद्ध करते हैं तिसके मल दूर हो जाते हैं; सच्छास्त्र अरु ज्ञानवान्के वचनानुसार दृढ पुरुषार्थ करोगे, तब मलीन वासना दूर हो जावेगी.

हे रामजी! पूर्वके मलीन पाप कैसे जानियें अरु शुभ कैसे जानियें सो श्रवण करहु, जो चित्त विषयकी ओर धावे, अरु शास्त्रविरुद्ध मार्गकी ओर जावे, अरु शुभकी ओर न धावे, तौ जानियें, जो पूर्वका कर्म कोउ मलीन है; अरु जो संतजनहु अरु सच्छास्त्रहुके अनुसार चेष्टा करै; अरु संसारमार्गतें विरक्त होवे,

तब जानियें जो पूर्वका कर्म शुद्ध है. तातें हे रामजी! तुझकों दोनों करके सिद्धता है; जो पूर्वका संस्कार शुद्ध है, तातें तेरा चित्त शीघ्रही सत्संग अरु सच्छास्त्रके वचनकों ग्रहण करी लेवैगा; अरु शीघ्रहीं तुझकों आत्मपदकी प्राप्ति होवैगी; अरु जो तेरा चित्त इस शुभ मार्गविषे स्थिर नहीं हो सकता, तौ दृढ पुरुषार्थकरि संसारसमुद्रतें पार होवहु.

हे रामजी! तूं चैतन्य है, जड तौ नहीं, अपने पुरुपार्थका आश्रय करहु, मेरा भी यही आशीर्वाद है, जो तुमारा चित्त शीघ्रहीं शुभ आचरणविषे स्थिर होवै, अरु ब्रह्मविद्याका जो सिद्धांत सार है, तिसविषे स्थित होवै. हे रामजी! श्रेष्ठ पुरुष भी वही है, जिसका पूर्वका संस्कार यद्यपि मलीन भी था, परंतु संत अरु सच्छास्त्रके अनुसार दृढ पुरुषार्थ किया है, सो सिद्धताको प्राप्त भया है; अरु जो मूर्ख जीव हैं तिनहुने अपना पुरुपार्थ त्याग किया है, तातें संसारतें मुक्त नहीं होता; पूर्वका जो कोउ पापकर्म किया होता है, तिसके मलन करके पापमें धावता है; अपना पुरुपार्थ त्यागनेतें अंध हो जाता है, अरु विशेपकरि धावता है.

जो श्रेष्ठ पुरुष हैं, तिनकों यह कर्त्तव्य है; प्रथम तौ पांचौं इंद्रिय वश करनी; शास्त्रानुसार तिनकों वर्त्तावनी; शुभ वासना दृढ करनी; अशुभका त्याग करना;

यद्यपि त्यागनी दोनों वासना है; प्रथम शुभ वासनाकों इकट्ठी करनी; अरु अशुभका त्याग करना; जब शुद्धवासना करके कषाय परिपक्व होवैगा; अर्थ यह जो अंतःकरण जब शुद्ध होवैगा, हृदयविषे संत अरु सच्छास्त्रका जो सिद्धांत है, तिसका विचार उत्पन्न होवैगा, औ तातें तुझकों आत्मज्ञानकी प्राप्ति होवैगी, तिस ज्ञानद्वारा आत्मसाक्षात्कार होवैगा; बहुरि क्रियाज्ञानका भी त्याग हो जावैगा, केवल शुद्ध अद्वैतरूप अपना आप शेष भासैगा; तातें हे रामजी ! अवर सब कल्पनाका त्याग करी संतजन अरु सच्छास्त्रहुके अनुसार पुरुषार्थ करहु.

इति श्रीयोगवासिष्ठे मुमुक्षुप्रकरणे परमपुरुषार्थवर्णनं नाम नवमः सर्गः ॥ ९ ॥

दशमः सर्गः १०.

अथ वसिष्ठोत्पत्तिस्तथा वसिष्ठोपदेशागमनवर्णनं.

वसिष्ठ उवाच–हे रामजी ! मेरे वचनका ग्रहण करौ, सो वचन बांधव जैसे हैं; बांधव कहियें जो तेरे परम मित्र होवहींगे, अरु दुःखहुतें तेरी रक्षा करैंगे. हे रामजी ! यह जो मोक्ष उपाय तुझकों कहता हौं, तिसके अनुसार तूं पुरुषार्थ करहु; तब तेरा परम अर्थ सिद्ध

होवैगा; अरु यह चित्त जो संसारके भोगकी और धावता है, तिस भोगरूपी खाडविषे चित्तकों गिरने मत देहु; भोगकों विरस जानिके त्याग देहु; उह त्याग तेरा परममित्र होवैगा; अरु त्याग भी ऐसा करहु जो बहुरि भोगहुका ग्रहण न होय.

हे रामजी! यह मोक्ष उपाय संहिता है; चित्तकों एकाग्र करके इसकों श्रवण करी तिसकरि परमानंदकी प्राप्ति होवैगी; प्रथम शम अरु दमको धारौ, अर्थ यह जो संपूर्ण संसारकी वासनाका त्याग करहु, अरु उदारता करके तृप्त रहना, इसका नाम शम है; अरु दम अर्थ यह जो बाह्य इंद्रियकों वश करना; जब इसकों प्रथम धारैगा तब परमतत्त्वका विचार आय उत्पन्न होवैगा; तिस विचारतें विवेकद्वारा परमपदकी प्राप्ति होवैगी, जिस पदकों पायकरि बहुरि दुःख कदाचित् न होवैगा; अविनाशी सुख तुझकों आय प्राप्त होवैगा; तातें जो कछु मोक्ष उपाय यह संहिता है, तिसके अनुसार पुरुषार्थ करहु, तब आत्मपदकों प्राप्त होवहींगा, पूर्व जो कछु ब्रह्माजीने हमकों उपदेश किया है, सो मैं तुझको कहता हौं.

राम उवाच—हे मुनीश्वर! तुमकों जो ब्रह्माजीनें उपदेश किया था, सो किस कारण किया था अरु कैसे तुमनें धाऱ्या सो कहौ.

वसिष्ठ उवाच–हे रामचंद्र! शुद्ध चिदाकाश एक है, अरु अनंत है, अविनाशी हैं, परमानंदरूप है; चिदानंदस्वरूप है; ब्रह्म हैं; तिसविषे संवेदन स्पंदरूप होत है, सो विष्णुसोंकरि स्थित भई है सो विष्णुजी कैसा है, जो स्पंद अरु निस्पंदविषे एकरस है, कदाचित् अन्यथा भावकों नहीं प्राप्त हुवा, जैसे समुद्रविषे तरंग उपजते हैं, तैसे शुद्ध चिदाकाशतें स्पंदकरके विष्णु उत्पन्न हुवा हैं; तिस विष्णुजीके स्वर्णवत् किरणवाले नाभिकमलतें ब्रह्माजी प्रगट भया है; तिस ब्रह्माजीनें ऋषिमुनीश्वरसहित स्थावर जंगम प्रजा उत्पन्न करि, सो मनोराज्यकरि ब्रह्माजीनें जगत्कों उत्पन्न किया.

तिस जगत्की कौनविषे जो जंबुद्वीप, भरतखंड है, तिसविषे मनुष्यकों दुःखकरि आतुर देखीकरि ब्रह्माजीकों करुणा उपजी, जैसे ज्यौं पुत्रकों देखी पिताकों करुणा उपजती है; तब तिसके सुख निमित्त ब्रह्माजीनें तप उत्पन्न किया, जो सुखी होवहीं; अरु आज्ञा करी जो तप करो; तब तप करत भये; तिस तपकरि स्वर्गादिकहुकों जाय प्राप्त होने लगे, तिन सुखहुकों भोगीकरि बहुरि गिरहीं, तब दुःखी रहे; ऐसे ब्रह्माजी देखीकरि सत्यवाक् धर्मकों प्रतिपादन करत भये; तिनके सुखके निमित्त आज्ञा करी; तिस धर्मके

प्रतिपादनकरि लोकहुकों सुख प्राप्त होवने लगे; तहां केताक काल सुख भोगकरि बहुरि गिरहीं, तब दुःखी-के दुःखी रहें; बहुरि ब्रह्माजीनें दानतीर्थादिक पुण्य-क्रिया उत्पन्न करके उनकों आज्ञा करी जो इनके सेवनेकरि तुम सुखी होहुगे; जब वह जीव उनकों सेवने लगे, तब वडे पुण्यलोकहुकों प्राप्त भये; अरु तिनके सुख भोगने लगे, बहुरि केताक काल अपने कर्मके अनुसार भोग भोगी गिरे; तब तृष्णाकरि ब-हुत सुख दुःख भये; अरु दुःखकरि आतुर हुवे, तब ब्रह्माजी देखत भया, जो जन्म अरु मरणके दुःखकरि महादीन होते हैं, तातें सोई उपाय करियें, जिसक-रि उनका दुःख निवृत्त होवै.

हे रामचंद्रजी ! ब्रह्माजी विचारत भया, जो इसका दुःख आत्मज्ञानविना निवृत्त नहीं होनेका; तातें आ-त्मज्ञानकों उत्पन्न करियें, जो यह सुखी होवहीं, इस प्रकार विचारकरि आत्मतत्त्वका ध्यान करत भया, आत्मतत्त्वके ज्ञानतें संकल्प किया; तिस ध्यानके क-रनेतें जो शुद्ध तत्त्वज्ञान है, तिसकी मूर्ति होकरि मैं प्रगट भया; सो मैं कैसा हों ? जो ब्रह्माजीके समान हों; जैसे उनके हाथविषे कमंडलु है तैसे मेरे हाथविषे कमंडलु है; जैसे उनके कंठविषे रुद्राक्षकी माला हैं; तैसे मेरे कंठमे भी रुद्राक्षकी माला है; जैसे उनके

उपर मृगछाला है, तैसे मेरे उपर मृगछाला है; इस प्रकार ब्रह्माजी अरु मेरा समान आकार है; अरु मेरा शुद्ध-ज्ञानस्वरूप है, मुझकों जगत् कछु नहीं भासता; सुपुप्तिकी नांई जगत् मुझकों भासता है; तब ब्रह्माजीनें विचार किया जो इसकों मैं जीवहुके कल्याणनिमित्त उत्पन्न किया है; अरु यह तौ शुद्ध ज्ञानस्वरूप है; अरु अज्ञानमार्गीकों उपदेश तब होवै, जब कछु प्रश्न उत्तर होवै, अरु तब मिथ्याका विचार होवै.

हे रामजी ! जीवहुके कल्याणनिमित्त मुझकों ब्रह्माजीनें गोदमें बेठाया, अरु शीसपैं हाथ फेर्या, तिसकरि मैं शीतल हो गया; जैसे चंद्रमाकी किरणकरि शीतलता होती है, तैसे मैं शीतल भया; तब ब्रह्माजीनें मुझकों जैसे हंसकों हंस कहैं यों कह्या; हे पुत्र ! जीवहुके कल्याणनिमित्त एक मुहूर्त्तपर्यंत तूं अज्ञानकों अंगीकार करहु, श्रेष्ठ पुरुष जो हैं सो अवरहुके निमित्त भी अंगीकार करते आये हैं. जैसे चंद्रमा बहुत निर्मल है; परंतु श्यामताकों अंगीकार किया है, तैसे तूं भी एक मुहूर्त्त अज्ञानकों अंगीकार करहु.

हे रामजी ! इस प्रकार मुझकों कहीकरि ब्रह्माजीनें शाप दिया, जो तूं अज्ञानी होवैगा; तब मैं ब्रह्माजीकी आज्ञा मानी शापकों अंगीकार किया; तब मेरा जो शुद्ध आत्मतत्त्व अपुना आप था, तिसतें मैं अन्य-

की नांईं होत भया, मेरी स्वभावसत्ता मुझकों विस्मरण हो गई, अरु मेरा मन जागी आया, भावअभावरूप जगत् मुझकों भासने लगा, अरु आपकों मैं वसिष्ठ जानत भया, अरु ब्रह्माजीका पुत्र यों जानत भया. अरु नानाप्रकारके पदार्थसहित जगत् जानत भया, अरु तिनकी ओर चंचल होत भया; तब मैं संसारजालकों दुःखरूप जानीकरि ब्रह्माजीतें पूछत भया. हे भगवन्! यह संसार कैसे उत्पन्न भया अरु कैसे लीन होता है? हे रामजी! जब इस प्रकार पिता ब्रह्माजीसों प्रश्न किया, तब भली प्रकार मुझकों उपदेश करत भये तिसकरि मेरा अज्ञान नष्ट हो गया. जैसे सूर्य उदय हुवे तम निवृत्त हो जाता है तैसे मेरा अज्ञान निवृत्त हो गया; अरु मैं शुद्धताकों प्राप्त भया, जैसे आदर्शकों मार्जन करता है, अरु शुद्ध हो आवता है; तैसे मै शुद्ध हुवा.

हे रामजी! मै ब्रह्माजीतें भी अधिक होत भया, तब मुझकों परमेष्ठी ब्रह्माजीनें आज्ञा करी; हे पुत्र! जंबुद्वीप भरतखंडमें जाउ, तुझकों अष्ट प्रजापतिका अधिकार है, तहां जाइकरि जीवहुकों उपदेश करहु; जिसकों संसारके सुखकी इच्छा होवे, तिसकों कर्ममार्गका उपदेश करनां; तिसकरि स्वर्गादिक सुख भोगेंगे; अरु संसारतें विरक्त होवें, सो जिनकों आत्मपदकी

इच्छा होवै, तिसकों ज्ञान उपदेश करनां; तातें तूं अव भूलोकविषे जाहु. हे रामजी ! इस प्रकार मेरा उपदेश अरु उपजना हुवा है, अरु इस प्रकार मेरा आवना हुआ है.

इति श्रीयोगवासिष्ठे मुमुक्षुप्रकरणे वसिष्ठोत्पत्तिस्तथा वसिष्ठोपदेशागमनं नाम दशमः सर्गः ॥ १० ॥

एकादशः सर्गः ११.

अथ वसिष्ठोपदेशवर्णनं.



वसिष्ठ उवाच—हे रामजी ! इस प्रकार पृथ्वी विषे मेरा आवना भया. मैं कैसा हौं ? जाकों जो ज्ञानकी वांछा होवै सो पूर्ण करिवेके लिये ब्रह्माजी मुझकों उत्पन्न करत भया.

राम उवाच—हे भगवन् ! तिस ज्ञानकी उत्पत्तितें अनंत जीवनकी शुद्धि कैसे भई, सो कहो.

वसिष्ठ उवाच—हे रामजी ! जो शुद्ध आत्मतत्त्व है, तिसका स्वभावरूप संवेदन स्फूर्ति है; सो ब्रह्माजी-रूप होकरि स्थित भई है, जैसे समुद्र अपनी द्रवताकरके तरंगरूप होता है, तैसे ब्रह्माजी भया है; बहुरि संपूर्ण जगत्कों उत्पन्न किया, अरु तीनों काल उत्पन्न किये, तब केता काल व्यतीत हुवा; अरु कलियुग आ-

था तिसकरि जीवहुकी बुद्धि मलीन हो गई; अरु पापविषे विचरने लगे, शास्त्रवेदकी आज्ञा मानवेतें रही गये, इस प्रकार धर्मकी मर्यादा छुपी गई, अरु पाप प्रगट भया; जेती कछु राजधर्मकी मर्यादा थी, सो सब नष्ट हो गई; अरु अपनी इच्छाके अनुसार जीव विचरने लगे, तातें कष्ट पावने लगे; तिनकों देखीकरि ब्रह्माजीको करुणा उपजी, तिस दयाकों धारिकरि भूमिलोकविषे मुझकों भेज्या, अरु कह्या, हे पुत्र ! जायकरि तुम धर्मकी मर्यादा स्थापन करौ; अरु जीवनकों शुद्ध उपदेश करौ; जिसकों भोगहुकी इच्छा होवै, तिसकों कर्मकांडका उपदेश करना; औ जप, तप, स्नान, संध्या, यज्ञादिकका उपदेश करना; अरु जो संसारतें विरक्त हुवे हैं, अरु मुमुक्षु हैं, जाकों परमपद पावनेकी इच्छा है, तिसकों ब्रह्मविद्याका उपदेश करना.

हे रामचंद्र ! जिस प्रकार मुझकों आज्ञा करि भूमिलोकविषे भेजते भये, तैसेई सनत्कुमार, नारदकोंहु कहते भये; तब हम सब ऋषीश्वर इकट्ठे होकरि विचारत भये; जो जगत्की मर्यादा किस प्रकार होवै अरु जीव शुभ मार्गविषे कैसे विचरहीं, तब हमहुने यह विचार किया, जो प्रथम राज्यका स्थापन करना जो जीव तिनकी आज्ञानुसार विचारहीं; प्रथम दंडकर्त्ता राजा स्थापन किया, सो कैसा राजा जो बडा वीर्य-

वान्, अरु तेजवान्, बडा उदार आत्मा भया; तिन राजाहुकों हम अध्यात्मविद्याका उपदेश किया; तिसकरि परमपदकों प्राप्त भया; जो परमानंदरूप अविनाशी पद है, तिस ब्रह्मविद्याका उपदेश तिसकों भया, तब सुखी भया. इस कारणतें ब्रह्मविद्याका नाम राजविद्या है; तब हमहुनें वेद, शास्त्र, श्रुति, पुराणकरि धर्मकी मर्यादा स्थापन करि; सो जप, तप, यज्ञ, दान, स्नान आदिक क्रियाकों प्रगट कीनी; अरे जीव ! तुम इसके सेवनेकरि सुखी होहुगे; तब सब फलकों धारीकरी तिनकों सेवने लगे; तामें कोउ विरला निरहंकार हृदयशुद्धताके निमित्त कर्म करता था.

हे रामजी ! जो मूर्ख थे सो कामनाके निमित्त मनमें फलके कर्म करते थे, सो घटीयंत्रकी नांई भटकते फिरते थे, सो कबहु ऊर्ध्व अरु कबहु नीचे आते थे; औ जो निष्काम कर्म करते थे, तिसका हृदय शुद्ध होता है, फिर सो ब्रह्मविद्याके अधिकारि होते हैं; ताके उपदेशद्वारा आत्मपदकीप्राप्ति होते है. इस प्रकारसों जीवन्मुक्त हुवे हैं; केई राजा विदितवेद सिद्ध हुवे हैं, सो राजकों परंपरा चलावता हमारे उपदेशद्वारा ज्ञानकों प्राप्त भये हैं, औ राजा दशरथहु ज्ञानवान् भया है, औ तूं भी इसी दशाकों आयके प्राप्त हुवा है, सो तूं सबते श्रेष्ठ हुवा है, जैसे तूं विरक्तआत्मा हुवा है, तैसे आगेहु स्वा-

भाविक विरक्तआत्मा भये हैं, सो स्वभावकर देहशुद्धिकर हुवे हैं, इसी कारणतें तूं श्रेष्ठ है. जो कोउ अनिष्ट दुःख प्राप्त होता है, तिसकर विरक्तता उपजती है, सो तुझकों नहीं भई, तुझकों सब इंद्रियके विषय विद्यमान हैं, तैसे होत तेरेकों वैराग्य हुआ है, तातें तूं श्रेष्ठ है.

हे रामजी! जो समान आदिक कष्टके स्थान कहैं, सो देखके सबकों वैराग्य उपजता है, जो कछु नहीं मर जाना है तिनमें जो कोउ श्रेष्ठ पुरुष होता है, सो वैराग्यकों दृढकर रखता है; औ जो मूर्ख है, सो फिर विषयमें आसक्त हो जाता है, तातें जिनको अकारण वैराग्य उपजता है; सो श्रेष्ठ है. हे रामजी! जो श्रेष्ठ पुरुष हैं सो अपने वैराग्य अरु अभ्यासके बलकरके संसारबंधनतें मुक्त हो जाते हैं, जैसे हस्ती बंधनको तोरके अपने बलसो निकस जाता है, तब सुखी होता है, तैसे वैराग्य अभ्यासके बलकर बंधनतें ज्ञानी मुक्त होत है.

हे रामजी! यह संसार बडा अनर्थरूप है, जा पुरुषनें अपने पुरुषार्थ करके बंधनकों नहीं तोऱ्या, तिनकों रागदोषरूपी अग्नि जरावत है, अरु जिस पुरुषनें अपने पुरुषार्थ करके शास्त्र औ गुरुकों प्रमाण करके ज्ञान साध्या है, सो उस पदकों प्राप्त भये हैं, तिनकों आध्यात्मिक, आधिदैविक, आधिभौतिक, ताप जलाय शकता नही, जैसे वर्षाकालमें बहुत वर्षाके होत

वनकों दावानल जलाय नहीं शकता, तैसे ज्ञानीकों आध्यात्मिक आदि ताप कष्ट नहीं देत.

हे रामजी! जिन श्रेष्ठ पुरुषनें संसारकों विरस जानकर त्याग किया है, तिनकों संसारका पदार्थ गिराय नहीं शकता; अरु जो मूर्ख हैं तिनकों गिराय देते हैं; जैसे अंधेरी चलत तीक्ष्ण पवनके वेगसों वृक्ष गिर जाते हैं; परंतु कल्पवृक्ष गिरता नहीं; तैसे हे रामजी! श्रेष्ठ पुरुष वही जिसकों संसार विरस हो गया है, सो केवल आत्मतत्त्वकी इच्छा करके तिस परायण भये हैं; तिनकोंई ब्रह्मविद्याका अधिकार है. सोई उत्तम पुरुष है. हे रामजी! तूं भी तैसा उज्वल पात्र है, जैसे कोमल पृथ्वीमें बीज बोते हैं, तैसे तुझकों मैं उपदेश करता हों; औ जिसकों भोगकी इच्छा है, औ संसारकी और यत्न करता है, सो पशुवत् है; श्रेष्ठ पुरुष वही है, जिसकों संसार तरनेका पुरुषार्थ होता है.

हे रामजी! प्रश्न तिनके पास करियें, जानवेमें आवै जो मेरे प्रश्नका उत्तर देनेकों समर्थ है; औ जिसमें उत्तर देवेका सामर्थ्य दिखवेमें नहीं आवै, तिससों प्रश्न करना नहीं; औ उत्तर देनेकों जो समर्थ देखियें, औ तिसके वचनमें भावना न होय, तब भी तिससों प्रश्न नहीं करियें; काहेतें जो दंभकर प्रश्न करनेमें पाप होता है; औ गुरु भी उपदेश तिनकों करता है,

जो संसारतें विरक्त होवै; अरु केवल आत्मपरायण होनेकी श्रद्धा होवै; अरु आस्तिकभाव होवे, ऐसा पात्र देखके उपदेश करै. हे रामजी! जो गुरु अरु शिष्य दोनों उत्तम होते हैं, तव वचन शोभते हैं. तुम उपदेशका शुद्ध पात्र हो; जेते कछु गुण शिष्यके शास्त्रमें वर्णन किये हैं, सो सब तेरेमें पेयत हैं; औ मैं उपदेश करनेमें समर्थ हौं तातें कार्य शीघ्र होवैगा.

हे रामजी! शुभ गुणसाथ तेरी बुद्धि निर्मल होय रही है; तेरा जो सिद्धांतका सार वचन है सो तेरे हृदयमें प्रवेश कर रहैगा. जैसे उज्वल वस्त्रकों केशरका रंग शीघ्र चढ जाता है, तैसे तेरे निर्मल चित्तकों उपदेशका रंग लगैगा. जैसे सूर्यके उदयते सूर्यमुखी कमल खिलते हैं, तैसे तेरी बुद्धि शुभ गुणकर खिल आई है. हे रामजी! जो कछु शास्त्रका सिद्धांत आत्मतत्त्व में तुझकों कहता हौं, तिसमें तेरी बुद्धि शीघ्र प्रवेश करैगी; जैसे निर्मल जलमें सूर्यकी कांति प्रवेश करत है, तैसे तेरी बुद्धि आत्मतत्त्वमें शुद्धताकरके प्रवेश करैगी.

हे रामजी! मैं तेरे आगे हाथ जोरके प्रार्थना करत हौं, जो कछु मैं तुझको उपदेश करता हौं, तिसविषे तूं आस्तिकभावना करीयो, जो इन वचनकर मेरा कल्याण होवैगा; अरु जो तुझकों धारणा न होवै,

तौ प्रश्न मत करना; जा शिष्यकों गुरुके वचनमें आस्तिकभावना होती है, तिसका शीघ्र कल्याण होता है, तातें मेरे वचनमें आस्तिकभावना करियो; औ जिसकर तूं आत्मपदकों प्राप्त होवैगा सो मैं कहता हौं; प्रथम तौ यह कर जो अज्ञानी जीवमें असत्य बुद्धि है, तिनका संग त्याग कर.

अरु मोक्षद्वारके जो चार द्वारपाल हैं, तिनसों मित्रभावना कर; जब तिनसों मित्रभाव होयगा तब वह मोक्षद्वारमें पहुंचाय देयेंगे, तब आत्मदर्शन तुझकों होवैगा; सो द्वारपालके नाम श्रवण कर; सम, संतोष, विचार, सत्संग, यह चारों द्वारपाल हैं; जिन पुरुषनें इनकों वश किया है, तिनकों यह शीघ्र मोक्षरूपी द्वारके अंतर कर देते हैं. हे रामजी ! सो चारों वश न होवें, तौ तीनकों वश कर ले; अथवा दोकों वश कर ले. अथवा एककों वश कर; जो एक वश होवेगा, तौ चारौंई वश हो जायेंगे, इस चारौंका परस्पर स्नेह है; जहां एक आता है तहां चारों आयके रहते हैं, जा पुरुषनें इनसों स्नेह किया है सो सुखी भये हैं; औ जिननें इनका त्याग किया है; सो दुःखी हैं. हे रामजी ! यद्यपि प्राणका त्याग होवे, तो भी एक साधन तौ बल करके वश करना; एकके वश कियेतें चारोंही वशी होयेंगे; अरु तेरी बुद्धिमें शुभ गुणनें

आयके निवास किया है, जैसे सूर्यमें सब प्रकाश आय हुवे हैं; तैसे संतनें अरु शास्त्रने जो निर्मल गुण कहे हैं, सो सब तेरेमें पैयत है. हे रामजी! अब तूं मेरे वचनका अधिकारी भया है, जैसे तंद्रीके सुननेकों अंदोरा अधिकारी होता है, जैसे चंद्रमाके उदयते चंद्रवंशी कमल खिल आते हैं; तैसे शुभ गुणकर तेरी बुद्धि खिल आई है.

हे रामजी! सत्संग अरु सत्शास्त्रद्वारा बुद्धिकों तीक्ष्ण कियेतें शीघ्र आत्मतत्त्वमें प्रवेश होता है, तातें श्रेष्ठ पुरुष वही हैं, जिननें संसारकों विरस जानके त्याग किया है; अरु संत अरु सत्शास्त्रके वचनद्वारा आत्मपद पावनेका यत्न करते है, सो अविनाशी पदकों प्राप्त होते हैं, औ जो शुभमार्ग त्याग करके संसारकी और लगे है, सो महामूर्ख जड हैं; जैसे जल शीतलता करके बरफ हो जाता हैं, तैसे अज्ञानी मूर्खता करके दृढ आत्ममार्गतें जड होइ रहे हैं. हे रामजी! अज्ञानीके हृदयरूपी बिलमें दुराशारूपी सर्प रहता है, सो कदाचित् शांति नहीं पावता, अरु आनंदसों कबहुं प्रफुल्लित नहीं होता, अरु आशा करके सदा संकुचित रहता है, जैसे अग्निविषे मांस संकुच जाता है. हे रामजी! आत्मपदके साक्षात्कारमें विशेष आवरण आशाही है; जैसे सूर्यके आगे मेघका आवरण होता है,

तैसे आत्मतत्त्वके आगे दुराशा आवरण है; जब आशारूपी आवरण दूर होवै, तब आत्मपदका साक्षात्कार होवै. हे रामजी! आशा तब दूर होवै, जब संतकी संगति अरु सत्शास्त्रका विचार होवै.

हे रामजी! संसाररूपी एक वडा वृक्ष है, सो बोधरूपी खड्गकर छेद्या जाता है; जब सत्संग अरु सत्शास्त्रकर तीक्ष्णबुद्धि होवै, तब संसाररूपी भ्रमका वृक्ष नष्ट हो जाता है; जब शुभ गुण होते हैं, तब आत्मज्ञान आयके विराजता है; जहां कमल होते हैं, जहां भौंरे आयके स्थित होते हैं; तब शुभ गुणमें आत्मज्ञान रहता है. हे रामजी! शुभ गुणरूप पवनकर जब इच्छारूपी मेघ निवृत्त होता है, तब आत्मारूपी चंद्रमाका साक्षात्कार होता है; जैसे चंद्रमाके उदय हुवे आकाश शोभता है, तैसे आत्माके साक्षात्कार हुवे तेरी बुद्धि खिलैगी.

इति श्री योगवासिष्ठे मुमुक्षुप्रकरणे वसिष्ठोपदेशो नाम एकादशः सर्गः ॥ ११ ॥

द्वादशः सर्गः १२.

अथ तत्त्वज्ञमाहात्म्यवर्णनं.

वसिष्ठ उवाच— हे रामजी! अब तूं मेरे वचनका

अधिकारि है; काहेतें जो तप, वैराग्य, विचार, संतोष आदि जो शुभ गुण संत अरु शास्त्रने कहे हैं, सो सब तेरेमें पैयत हैं; तातें तूं मेरे वचनकों सुन, सो रज तम गुणकों त्यागकर शुद्ध सात्विकवान् होकर सुन; राजस जो विक्षेप अरु तामस जो लय निद्रामें होत है, सो दोउका त्याग करके सुन, जेते कछु जिज्ञासुके गुण शास्त्रमें वर्णन किये हैं, सो सबकर तूं संपन्न है, अरु जेते कछु गुरुके गुण शास्त्रमें वर्णन किये हैं, सो सब मेरेमें हैं; जैसे रत्नकर समुद्र संपन्न है; तैसे मैं संपन्न हों; तातें मेरे वचनका तूं अधिकारी है; औ मूर्खकों मेरे वचनका अधिकार नहीं. हे रामजी ! जैसे चंद्रमाके उदयतें चंद्रकांत मणि द्रवीभूत होता है, तब तामेंते अमृत सरता है; औ पथ्थरकी शिला है, तिनते द्रवीभूत नहीं होता है, तैसे जो जिज्ञासु होता है, तिसकों परमार्थवचन लगता है; अरु अज्ञानीकों नहीं लगता. हे रामजी ! शिष्य तौ शुद्ध पात्र होवै, अरु उपदेश करनेहारा ज्ञानवान् न होवै तौ उसकों आत्माका साक्षात्कार नहीं होवै, जैसे चंद्रमुखी कमलिनी निर्मल होय, अरु चंद्रमा न होय तब प्रफुल्लित नहीं होती तैसे; तातें तूं मोक्षका पात्र है; अरु मैं भी परमगुरु हौं; मेरे उपदेशकर तेरा अज्ञान नष्ट होय जावैगा.

मैं मोक्षका उपाय कहता हों, जब तिसकों तूं भले प्रकार विचारैगा, तब जेती कछु मलिनरूपी मनकी

वृत्ति हैं, तिनका अभाव हो जायगा; जैसे महाप्रलयके सूर्यकर मंदराचल पर्वत जल जाता है; तातें हे रामजी! वैराग्य अरु अभ्यासके बलकर इस मनकों अपनेविषे लीन कर शांतात्मा होवहु; तैंनें बालकावस्थासों लेकर अभ्यासकर रख्या है, तातें मन उपशम पायके आत्मपदेकों प्राप्त होवैगा. हे रामजी! सत्संग अरु सत्शास्त्रद्वारा जो आत्मपद पाया हैं, सो सुखी भये हैं; फिर तिनकों दुःख नहीं लगता; काहेतें जो दुःख देहाभिमानकर होता है, सो देहका अभिमान तौ तैंनें त्याग दिया है, तैसे जिसनें देहका अभिमान त्याग दिया है; अरु देहका आत्मता करके बहुरि ग्रहण नहीं करता, तातें सुखी रहता है. हे रामजी! जिननें आत्माका बल धरेके विचारद्वारा आत्मपद प्राप्त किया है, सो अकृत्रिम आनंदकर सदा पूर्ण है; सब जगत् तिसकों आनंदरूप भासता है, अरु जो असम्यग्दर्शी हैं, तिनकों जगत् अनर्थरूप भासता है, हे रामजी! संसरणरूप जो यह संसार सर्प है; सो अज्ञानीके हृदयमें दृढ हो गया है, सो योगरूपी गारुड मंत्र करके नष्ट हो जाता है; अन्यथा नहीं होता, औ सर्पका विष है, सो एक जन्ममें मारता है; अरु संसरणरूप जो विष है तिसकरके अनेक जन्म पायके मरता चल्या जाता है; शांतिवान् कदाचित् नहीं होता.

हे रामजी ! जो पुरुष सत्संग अरु सत्शास्त्रके वचनद्वारा आत्मपदको पाया है, सो आनंदित भया है, अरु अंतर्बाहिर सब जगत् इनकों आनंदरूप भासता है; अब सब क्रिया करनेमें आनंद विलास है; औ जिसनें सत्संग अरु सत्शास्त्रका विचार त्याग्या है, अरु संसारके सन्मुख है, तिसकर तिसकों संसार अनर्थरूप है सो ऐसा दुःख देते हैं; जैसे सर्पके दंसतें दुःखी होते हैं; अरु शस्त्रकर घाएल होते हैं, अरु अग्निमें परेकी नांई जलते हैं, अरु जेवरीसाथ बंध होते हैं, अरु अंधकूपमें गिरेतें कष्ट पाते हैं; तैसे संसारमें मनुष्य दुःख पाते हैं. हे रामजी ! जो पुरुष सत्संग अरु सत्शास्त्रद्वारा आत्मपदकों नहीं पाया, सो ऐसे कष्ट पाते हैं, सो नरकरूपी अग्निमें जरते हैं; अरु चक्कीविषे पिसाते हैं; पाषाणकी वर्षाकर चूर्ण होते हैं, कोल्हुमें पिलाते हैं; अरु शस्त्रसाथ कटते हैं; इत्यादिक जो बडे कष्ट हैं, सो तिनकों प्राप्त होते हैं हे रामजी ! ऐसा दुःख कोउ नहीं ! जो इस जीवकों प्राप्त नहीं होता; आत्माके प्रमादसों सब दुःख होते हैं; अरु जिन पदार्थकों यह रमणीय जानते हैं, सो चक्रकी नांई चंचल हैं; कबहु स्थिर नहीं रहते; सन्मार्गकों त्यागकर जो इनकी इच्छा करते हैं, सो महादुःखकों प्राप्त होते हैं; अरु जिन पुरुषनें संसारकों विरस जान्या है, औ

पुरुषार्थकी और दृढ भये हैं, तिनकों आत्मपदकी प्राप्ति होती है.

हे रामजी! जो पुरुषकों आत्मपदकी प्राप्ति भई है; तिनकों फिर दुःख नहीं होता, औ तिनके दुःख जो नष्ट नहीं होते, तौ ज्ञानके निमित्त पुरुषार्थ कोउ नहीं करता; जो अज्ञानी हैं तिनकों संसार दुःखरूप है, अरु ज्ञानीकों सब जगत् आनंदरूप है; अपने आ- पही है; उनकों भ्रम कोउ नहीं रहता. हे रामजी! ज्ञा- नवान्में नानाप्रकारकी चेष्टा भी दृष्ट आती है, तौ भी सदा शांतरूप है, अरु आनंदरूप है, संसारका दुःख कोउ नहीं स्पर्श कर शकता; काहेतें जो ति- ननें ज्ञानरूपी कवच पहिऱ्या है.

हे रामजी! ज्ञानवान्कों भी दुःख होता है; वडे वडे ब्रह्मर्षि अरु राजर्षि वहोत. ज्ञानवान् भये हैं, सोहु दुःखकों प्राप्त होते हैं, परंतु दुःखसों आतुर नहीं होते; क्यौं जो ज्ञानवान्नें ज्ञानका कवच पहिऱ्या है, तातें कोउ दुःख स्पर्श नहीं करता, सदा आनंदरूप हैं, जैसे ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र नानाप्रकारकी चेष्टा करते और जीवकों दृष्ट आवते हैं; अरु अंतरतें सदा शांत- रूप हैं; इस प्रकार और भी जो ज्ञानवान् उत्तम पुरु- ष हैं, सो शांतरूप हैं, ताकों कर्ताका अभिमान कोउ नहीं फुरता. हे रामजी! अज्ञानीरूपी जो मेघ है,

तिसकर मोहरूपी कुहाडाका वृक्ष है सो ज्ञानरूपी शरत्काल करके नष्ट हो जाता है; तातें स्वसत्ताकों प्राप्त होत है, अरु सदा आनंदकर पूर्ण है. हे रामजी! जो कछु क्रिया करते हैं सो तिनकों विलासरूप हैं; अरु सब जगत् आनंदरूप है, अरु शरीररूपी रथ, इंद्रियरूपी अश्व, औ मनरूपी रसा, तासों अश्वकों खेंचता है, अरु बुद्धिरूपी रथ वही है, तिस रथमें वह पुरुष बैठा है; अरु इंद्रियरूपी अश्व इसकों खोटे मार्गमें डारते हैं; अरु ज्ञानवानके इंद्रियरूपी अश्व हैं, सो ऐसे हैं, जो जहा जाते हैं, तहां आनंदरूप है, किसी ठौरमे खेद नहीं पावता; सब क्रियामें उनको विलास है; सर्वदा आनंदकर तृप्त रहते हैं.

इति श्रीयोगवासिष्ठे मुमुक्षुप्रकरणे तत्त्वज्ञमाहात्म्यं नाम द्वादशः सर्गः ॥ १२ ॥

त्रयोदश. सर्गः १३.

अथ शमवर्णनं.

वसिष्ठ उवाच —हे रामजी! इसी दृष्टीकों आश्रयकर, जो तेरा हृदय पुष्ट होवै; बहुरि संसारके इष्ट अनिष्टकर चलायमान न होवै; जिस पुरुषकों इस प्रकार आत्मपदकी प्राप्ति भई है, सो परम आनंदित

पुरुषार्थकी और दृढ भये हैं, तिनकों आत्मपदकी प्राप्ति होती है.

हे रामजी! जो पुरुषकों आत्मपदकी प्राप्ति भई है; तिनकों फिर दुःख नहीं होता, औ तिनके दुःख जो नष्ट नहीं होते; तौ ज्ञानके निमित्त पुरुषार्थ कोउ नहीं करता; जो अज्ञानी हैं तिनकों संसार दुःखरूप है, अरु ज्ञानीकों सब जगत् आनंदरूप है; अपने आपही है; उनकों भ्रम कोउ नहीं रहता. हे रामजी! ज्ञानवान्में नानाप्रकारकी चेष्टा भी दृष्ट आती है, तौ भी सदा शांतरूप है, अरु आनंदरूप है, संसारका दुःख कोउ नहीं स्पर्श कर शकता; काहेतें जो तिननें ज्ञानरूपी कवच पहिन्या है.

हे रामजी! ज्ञानवान्कों भी दुःख होता है; वडे वडे ब्रह्मर्षि अरु राजर्षि वहोत ज्ञानवान् भये हैं, सोहु दुःखकों प्राप्त होते हैं, परंतु दुःखसों आतुर नहीं होते; क्यों जो ज्ञानवान्नें ज्ञानका कवच पहिन्या है, तातें कोउ दुःख स्पर्श नहीं करता, सदा आनंदरूप हैं, जैसे ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र नानाप्रकारकी चेष्टा करते और जीवकों दृष्ट आवते हैं; अरु अंतरतें सदा शांतरूप हैं; इस प्रकार और भी जो ज्ञानवान् उत्तम पुरुष हैं, सो शांतरूप हैं, ताकों कर्ताका अभिमान कोउ नहीं फुरता. हे रामजी! अज्ञानीरूपी जो मेघ हैं,

तिसकर मोहरूपी कुहाडाका वृक्ष है सो ज्ञानरूपी शरत्काल करके नष्ट हो जाता है; तातें स्वसत्ताकों प्राप्त होत है, अरु सदा आनंदकर पूर्ण है. हे रामजी! जो कछु क्रिया करते है सो तिनकों विलासरूप हैं; अरु सब जगत् आनंदरूप है; अरु शरीररूपी रथ, इंद्रियरूपी अश्व, औ मनरूपी रसा, तासों अश्वकों खेचता है, अरु बुद्धिरूपी रथ वही है, तिस रथमे वह पुरुष वैठा है; अरु इंद्रियरूपी अश्व इसकों खोटे मार्गमे डारते हैं, अरु ज्ञानवानके इंद्रियरूपी अश्व हैं, सो ऐसे हैं, जो जहा जाते है, तहां आनंदरूप है, किसी ठौरमे खेद नहीं पावता; सब क्रियामे उनकों विलास है; सर्वदा आनंदकर तृप्त रहते है.

इति श्रीयोगवासिष्ठे मुमुक्षुप्रकरणे तत्त्वज्ञमाहात्म्य नाम द्वादशः सर्गः ॥ १२ ॥

त्रयोदशः सर्गः १३

अथ शमवर्णन.

वसिष्ठ उवाच —हे रामजी! इसी दृष्टीकों आश्रयकर, जो तेरा हृदय पुष्ट होवें, बहुरि संसारके इष्ट अनिष्टकर चलायमान न होवें; जिस पुरुषकों इस प्रकार आत्मपदकी प्राप्ति भई है, सो परम आनंदित

भये है; शोकको कर्त्ता नहीं है; न याचना करता है, हेयोपादेयतें रहित परमशांतिरूप अमृतकर पूर्ण होय रहे हैं, सो पुरुष नानाप्रकारकी चेष्टा करते दृष्ट आवते हैं; परंतु कछु नहीं करते; जहां उनके मनकी वृत्ति जाती है, तहां आत्मसत्ता भासती है, सो आत्मानंदकर पूर्ण होय रहे हैं; जैसे पूर्णमासीका चंद्रमा अमृतकरि पूर्ण रहता है, तैसे ज्ञानवान् परमानंदकरि पूर्ण रहता है. हे रामजी ! यह जो मैं तुझकों अमृतरूपी वृत्ति कही है, इसकों जब जानैगा तब तुझकों साक्षात्कार होवैगा; जब जिसकों आत्मज्ञानकी प्राप्ति है, तब सब दुःख नष्ट हो जाते हैं, जैसे चंद्रमाके मंडलमें ताप नहीं होता अरु अज्ञानीकों शांति कबहु नहीं होती; औ जो कछु क्रिया करता है, तिसमें दुःख पावता है; जैसे ककरके वृक्षमें कंटककी उत्पत्ति होती है तैसे अज्ञानीको दुःखकी उत्पत्ति होती है.

हे रामजी ! इस जीवकों मूर्खता करके बडे दुःख प्राप्त होते हैं, ऐसा दुःख अद्भुत और कोउ नहीं अरु किसी आपदा करके भी ऐसा दुःख नहीं होता जैसा दुःख मूर्खता करके पाते हैं, ऐसा दुःख कोउ नहीं. हे रामजी ! हाथमें ठीकरा ले चंडालके घरकी भिक्षा ग्रहण करै, औ आत्मतत्त्वकी जिज्ञासा होवै, तौ भी अवर ऐश्वर्यतें श्रेष्ठ है, परंतु मूर्खतासों जीवना व्यर्थ है

तिस मूर्खताकों दूर करनेकों मोक्ष उपाय मैं कहता हौं. हे रामजी! यह मोक्ष उपाय परमबोधका कारण है, कछुक बुद्धि संस्कृत होवै, अर्थ यह जो पदार्थके जाननेहारि होवै, अरु मोक्ष उपाय शास्त्रकों विचारै, तौ तिसकी मूर्खता नष्ट हो जावैगी, अरु आत्मपदकी प्राप्ति हौवैगी; जैसा आत्मबोधका कारण यह शास्त्र है, तैसा और शास्त्र त्रिलोकीविषे कोउ नहीं; नानाप्रकारके दृष्टांतसहित इतिहास हैं, जामें तिसकों जब विचारैगा तब परमानंदकों प्राप्त होवैगा; अज्ञानरूपी तीमिर नाश करनेकों ज्ञानरूपी शलाका है; जैसे अंधकारकों सूर्य नाश करता है, तैसे अज्ञानकों यह शास्त्रका विचार नाश करता है. हे रामजी! जिस प्रकार इसका कल्याण होता है, सो श्रवण कर; गुरु जो ज्ञानवान् है, सो शास्त्रका उपदेश करै अरु अपने अनुभवसों ज्ञान पावै, जब गुरु अरु शास्त्र औ अपना अनुभव यह तीनों इकट्ठे मिलें तब इसका कल्याण होवै; जबलग अकृत्रिम आनंदकों प्राप्त नहीं भया, तबलग दृढ अभ्यास करै; तिस अकृत्रिम आनंदकों प्राप्ति करनेहारा मैं गुरु हौं; जीवमात्रका मैं परम मित्र हौं; ऐसा मित्र अवर कोउ नहीं; हमारी संगति जीवकों आनंद प्राप्त करनेहारी है; तातें जो कछु मैं कहता हौं सो तूं कर.

हे रामजी! यह जो संसारके भोग हैं, सो क्षणमात्र हैं; तातें इनकों त्याग करहु; औ विषयके परिणाममें दुःख अनंत हैं; इनकों दुःखरूप जानकर त्याग दे, अरु हमसारिखे हो ज्ञानवानका संग कर औ हमारे वचनके विचारतें तेरे सब दुःख नष्ट हो जायेंगे. हे रामजी! जिस पुरुषने हमारे संग प्रीति करी है, तिसकों हमनें आनंदपदकी प्राप्ति कर दीनी है, जिस आनंदतें ब्रह्मादिक आनंदित भये हैं; औ ज्ञानवानहु आनंदित भये हैं, सो निर्दुःखपदकों प्राप्त भये हैं. हे रामजी! श्रेष्ठ पुरुष सोई है; जाने हमारे साथ प्रीति कीनी है; जिसने संत अरु शास्त्रके विचारद्वारा दृश्यकों अदृश्य जान्या है, अरु निर्भय हुवा है, आत्माका प्रमाद जीवकों दीन करता है, अज्ञानीका हृदयरूपी कमल तबलग सकुच्या रहता है, जबलग तृष्णारूपी रात्र होती है, जब ज्ञानरूपी सूर्य उदय होता है, तब तृष्णारूपी रात्र नष्ट हो जाती है; अरु हृदयरूपी कमल आनंदकर खिली आते हैं.

हे रामजी! जा पुरुषनें परमार्थमार्गकों त्याग्या है, अरु संसारके खानपान आदि भोगमें मग्न हुवा है, तिनकों तूं मेंडुक जान, जैसे कीचमें मेंडुक पर्या शब्द करता है, तैसा वह पुरुष है. हे रामजी! यह संसार बडा आपदाका समुद्र है; तातें जो कोउ श्रेष्ठ पुरुष है. सो सत्संग अरु सत्शास्त्रके विचार करके संसारसमुद्र

उलंघता है, अरु परमानंदकों प्राप्त होता है; आदि, अंत, मध्य रहित निर्भयपदकों प्राप्त होता है, अरु जो संसारसमुद्रके सन्मुख हुवा है, सो दुःखतें दुःखरूप पदकों प्राप्त भया है, कष्टतें कष्ट नरककों प्राप्त होता है; जैसे विषकों विष जान तिसका पान करता है, सो विष उसकों नाश करता है, तैसे जो पुरुष संसार असत्य जानके बहुरि संसारके और यत्न करता है, सो मृत्युकों प्राप्त होता है, हे रामजी ! जो पुरुष आत्मपदतें विमुख है; अरु आत्मपदकों कल्याणरूप जानता है, अरु आत्मपदके अभ्यासका त्याग कर संसारकी ओर धावता है, सो जैसे किसीके घरमें अग्नि लगी, अरु तृणका घर अरु तृणकी शय्या करीके शयन करता है, सो जैसे नाशको पावै तैसे जन्ममृत्युकों प्राप्त होवहींगे, औ संसारके पदार्थ देखकर रागदोपवान् हुवे हैं; सो सुख बिजुरीका चमका जैसा है. औ जो होयके मिट जावै, स्थिर नहीं रहै; तैसा संसारका दुःख आगमापायि है.

हे रामजी ! यह संसार अविचार करके भासता है, अरु विचार कियेतें लीन हो जाता है; विचार कियेतें लीन जो नहीं होता, तो तुमकों उपदेश करनेका काम नहीं था; सो तो विचार कियेतें लीन हो जाता है, इसी कारणतें पुरुषार्थ चाहियें; जैसे हाथमें दीपक होवै, अरु अंध होय कूपमें गिरै सो मूर्खता है, तैसे सं-

सारभ्रमके निवारणहारे गुरु शास्त्र विद्यमान हैं, तिनकी शरण न आवै सो मूर्ख है. हे रामजी! जो पुरुष संतकी संगति, अरु सत्शास्त्रके विचारद्वारा आत्मपदकों पाया है, सो पुरुष केवल कैवल्यभावकों प्राप्त भया; अर्थ यह जो शुद्ध चैतन्यकों प्राप्त हुवा है; अरु संसारभ्रम तिसका निवृत्त हो गया है.

हे रामजी! यह संसार मनके संसरणतें उपज्या है, सो इसका कल्याण बांधव करके नहीं होता है; अरु धन करके भी नहीं होता है, प्रजा करके भी नहीं होता है, अरु तीर्थ अरु देवद्वार करके भी नहीं होता है, ऐश्वर्य करके भी नहीं होता है; एक मनके जीतनेतें कल्याण होता हैं.

हे रामजी! जिसकों ज्ञानी परमपद कहते हैं, औ जिसकों रसायण कहतें हैं, जिसके पायेतें इसका नाश नहीं होय, अरु अमर होवै, अरु सब सुखकी पूर्णता होवै, इसका साधन समता अरु संतोष हैं; इनकर ज्ञान उत्पन्न होता है, सो आत्मज्ञानरूपी एक वृक्ष है, तिसका फूल शांति है; अरु स्थिति इसका फल है, जिस पुरुषकों यह ज्ञान प्राप्त हुवा है, सो शांतिवान् हुवा है; सो निर्लेप रहता है, तिसकों संसारका भावाभावरूप स्पर्श नहीं है; जैसे आकाशमें सूर्य उदय होता है, तब जगतकी क्रिया होती है, फिर जब सो अदृश्य

होता है, तब जगतकी क्रिया भी लीन हो जाती है; जैसे तिस क्रिया होने न होनेमें आकाश ज्योंका त्यों है, तैसे ज्ञानवान् सदा निर्लेप है; तिस आत्मज्ञानकी उत्पत्तिका उपाय यह मेरा श्रेष्ठ शास्त्र है.

हे रामजी ! जो पुरुष इस मोक्षोपाय शास्त्रकों श्रद्धासंयुक्त पढै अथवा सुनै तौ वाई दिन सो मोक्षका भागी होय रहै; अरु मोक्षके चार द्वारपाल हैं सो मैं तुझकों कहता हौं; सो इनमेंते एकहु जब अपने वश होय, तब मोक्षद्वारमें इसका शीघ्र प्रवेश होवै; सो चारोंका नाम कहौं सो सुन. हे रामजी ! यह शम इसको परम विश्रामका कारण है, अरु यह संसार जो दिखता है, सो मरुस्थलकी नदीवत् है; इसकों देखकर मूर्ख अज्ञानीरूपी जो मृग हैं, सो सुखरूप जल जानकर दौरते हैं; अरु शांतिकों नहीं प्राप्त होते; जब शमरूपी मेघकी वर्षा होवै, तब सुखी होवै. हे रामजी ! शमही परम आनंद है, अरु शमही परम पद है; औ शिवपद है; जिस पुरुषनें शम पाया है, सो संसारसमुद्रतें पार हुवा है; तिसकों शत्रु सो मित्र हो जाते हैं. हे रामजी ! जब चंद्रका उदय होता है, तब अमृतकी कणा फुटती है अरु शीतलता होती है, तैसे जिसके हृदयमें शमरूपी चंद्रमा उदय होता है; तिसके सब ताप मिट जाते हैं, अरु परम शांतिवान् होते हैं. हे रामजी ! शम देवताके

अमृतसमान है, वही परम अमृत है; शम करके इसकों परम शोभा प्राप्त होती है; जैसे पूर्णमासीके चंद्रमाकी कांति परम उज्ज्वल होती है, तैसे शमकों पायके उसकी उज्ज्वल कांति होती है; जैसे विष्णुके दो हृदय हैं, सो एक तो अपने शरीरमें है, दूसरा संतमें है; तैसे इसके दो हृदय होते हैं; एक अपने शरीरमें, दूसरा शम भी इनका हृदय होता है; ऐसा आनंद अमृतके पान कियेतेंहु नहीं होता; अरु लक्ष्मीकी प्राप्तितें भी नहीं होता; जो आनंद शमवानकों होता है.

हे रामजी! प्राणहुतें भी प्रिय कोई होवै सो अंतर्ध्यानकर फिर प्राप्त होवै, तैसा आनंद नहीं होवै. जैसा आनंद शमवानकों होवै; तिसके दर्शनकर भी आनंद प्राप्त होता है; अरु ऐसा आनंद राजाकों भी नहीं होता, जो बाहिरतें श्रेष्ठ मंत्री होता है अरु अंतरतें सुंदर स्त्रिया होती हैं, तिनकर भी ऐसा आनंद नहीं होता, जैसा आनंद शमसंपन्न पुरुषकों होता है. हे रामजी! जिस पुरुषकों शमकी प्राप्ति भई है, सो वंदना करने योग्य है अरु पूजने योग्य है, जिसकों शमकी प्राप्ति भई है, तिसकों उद्वेग नहीं आवै, अरु लोकहुंतें उद्वेग नहीं पावै, उसकी क्रिया अमृतसमान है, अरु वचन भी उसके अमृतकी नांई मीठे हैं; जैसे चंद्रमाके किरण शीतल अरु अमृतरूप हैं, सो सबकों हृदयारा-

। हैं, तैसे संतजनके वचन हैं; जिस पुरुषकों शमकी
ाप्ती भई है, तिसकी संगति जब इस जीवकों प्राप्त
ोती है, तब सब परम आनंदित होते हैं.

हे रामजी! जैसे बालक माताकों पायके आनंदित
ोता है, तैसे जिसकों शमकी प्राप्ती भई है तिसके
ंगकर जीव अधिक आनंदवान् होता है; जैसे किस-
का बांधव मुवा हुआ फिर आवे, औ इसकों आनंद
ाप्त होवे, तिसतें भी अधिक आनंद शमसंपन्न पुरुष-
कों पायके होता है. हे रामजी! ऐसा आनंद चक्रवर्त्ती
राज्यके पायेतें भी नहीं होता, अरु त्रिलोकीका राज्य
पायेतें भी नहीं होता, जिसकों शमकी प्राप्ती भई है,
तिसके शत्रु भी मित्र हो जाते हैं, तिसकर कछु भय
भी नहीं होता, अरु सर्पका भय भी तिसकों नहीं रह-
ता; सिंहका भय भी तिसकों नहीं रहता; औरहु कि-
सीका भय नहीं रहता; सदा निर्भय शांतरूप रहता है.
हे रामजी! जो कोउ कष्ट आय प्राप्त होवे, औ काल-
की अग्नि आय लगे, तौ भी सो चलायमान नहीं हो-
ता, सदा शांतिरूप रहता है, जैसे शीतल चांदनी चं-
द्रमामें स्थित है; तैसे जो कछु शुभ गुण अरु संपदा
है, सो सब शमवानके हृदयमें आय स्थित होते हैं.

हे रामजी! जो पुरुष आध्यात्मिकादि तापकर ज-
लता है; तिसकों हृदयमें शमकी प्राप्ति होवे, तब ताप

मिट जाते हैं, जैसे तप्त पृथ्वी वर्षा करके शीतल हो-जाती है, तैसे उसका हृदय शीतल हो जाता है, जिसकों शमकी प्राप्ति भई है, सो सब क्रियामें आनंदरूप है, तिसकों दुःख कोउ नहीं स्पर्श करता; जैसे वज्रशिलाकों बाण वेध नहीं शकता, तैसे जिस पुरुषनें शमरूपी कवच पहिऱ्या है, तिनकों आध्यात्मिकादि पाप वेध नहीं शकता, वह सर्वदा शीतलरूप रहता है.

हे रामजी ! तपस्वी, पंडित, याज्ञिक, धनाढ्य, सो पूजा मान्य करनें योग्य हैं, परंतु जिसकों शमकी प्राप्ति भई है सो सबसें उत्तम है; सो सबकों पूजने योग्य है, उसके मनकी वृत्ति आत्मतत्त्वकों ग्रहण करती है; शमकर पूर्ण है; अरु सब क्रियानमें सोहत है; जिस पुरुषकों शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गंध, यह इंद्रियके विषय इष्ट अनिष्टमें रागदोष नहीं होता, तिसकों शांतात्मा कहत हैं. हे रामजी! जो संसारके रमणीय पदार्थमें बध्यमान नहीं होता, अरु आत्मानंदकर पूर्ण है, तिसकों शांतिवान कहते हैं, वाकों संसारके शुभ अशुभकर मलिनपना नहीं लगता; सदा निर्लेप रहता है. जैसे आकाश सब पदार्थतें निर्लेप है तैसे शांतिवान् सदा निर्लेप रहता है. हे रामजी ! ऐसा जो पुरुष है सो इष्ट विषयकी प्राप्तिमें हर्षवान् होता नहीं अरु अनिष्ट विषयकी प्राप्तिमे शोकवान् होता नहीं; अरु अंतरतें सदा शांत रहता है;

उसकों कोउ दुःख स्पर्श नहीं करता; अपने आपमें सदा परमानंदरूप रहता है; जैसे सूर्यके उदय हुवे अंधकार नष्ट हो जाता है; तैसे शांतिके पाये सब दुःख नष्ट हो जाते हैं; सदा निर्विकार रहता है.

हे रामजी! सो पुरुष सब चेष्टा करते दृष्ट आता हैं परंतु सदा निर्गुणरूप है; कोउ क्रिया उसकों स्पर्श नहीं करती. जैसे जलमें कमल निर्लेप रहता है, तैसे शांतिवान् सदा निर्लेप रहता है. हे रामजी! जो पुरुष वडी राजसंपदाकों पायकर अरु वडी आपदाकों पायकर ज्यौंका त्यौं अलग रहता है, सो शांतिवान् कहिये हे रामजी! जो पुरुष शांतितें रहित हैं, तिसका चित्त क्षण क्षण रागदोषकर तपता है; अरु जिसकों शांतिकी प्राप्ति भई है, सो अंतर्बाहिर शीतल है; अरु सदा एकरस है; जैसे हिमालय सदा शीतल रहता है, तैसे वह सदा शीतल रहता है, वाके मुखकी कांति बहोत सुंदर हो जाती है; जैसे निष्कलंक चंद्रमा होवे, तैसे शांतिवान् निष्कलक रहता है. हे रामजी! जिसकों शांति प्राप्त भई है, सो परम आनंदित हुवे हैं; परम लाभ तिसको प्राप्त होत हैं, ज्ञानी इसको परमपद कहते हैं जिसकों पुरुषार्थ करना है, तिसको शांतिकी प्राप्ति करनी चाहिये. हे रामजी! जैसे मैनें कहा है,

तिस क्रम करके शांतिका ग्रहण करौ, तब संसारसमुद्रके पार पहुंचोगे.

इति श्रीयोगवासिष्ठे मुमुक्षुप्रकरणे शमनिरूपणं नाम त्रयोदशः सर्गः ॥ १३ ॥

चतुर्दशः सर्गः १४.

अथ विचारवर्णनं

वसिष्ठ उवाच—हे रामजी ! अब विचारका निरूपण सुन ! जब हृदय शुद्ध होता है, तब विचार होता है; अरु शास्त्रार्थ विचारद्वारा बुद्धि तीक्ष्ण होती है. हे रामजी ! अज्ञानरूपी जो वन है, तिसमें आपदारूपी वेलीकी उत्पत्ति होती है; तिसकों विचाररूपी खड्ग करके काटैगा, तब शांत आत्मा होवैगा, अरु मोहरूपी हस्ती है, सो जीवके हृदयकमलका खंड खंड कर डारता है, अभिप्राय यह जो इष्ट अनिष्ट पदार्थमें रागदोषकर छेद्या जाता नहीं; जब विचाररूपी सिंह प्रगटे तब मोहरूपी हस्तिका नाश करै; फिर शांतात्मा होवै.

हे रामजी ! जिसकों कछु सिद्धता प्राप्त हुई है, सो विचार अरु पुरुषार्थकर भई है; जो राजा होता है, सो प्रथम विचार कर पुरुषार्थ करता है; तिसकर रा-

ज्यकों प्राप्त होता है. बल, बुद्धि अरु तेज, चतुर्थ जो पदार्थका आगमन, अरु पंचम पदार्थकी प्राप्ति होती है सो पाचोंकी प्राप्ति विचारकर होती है; अर्थ यह जो इंद्रियोंका जीतना; अरु बुद्धि सो आत्माव्यापिनी, अरु तेज पदार्थका आगमन इनकी प्राप्ति विचारसों होती है. हे रामजी! जिन पुरुषनें विचारका आश्रय लिया है, सो विचारकी दृढता करके जिसकी वांछा करते हैं, तिसकों पावते हैं; तातें विचार इसका परम-मित्र है, जो विचारवान् पुरुष है सो आपदामें मग्न नहीं होता; जैसे तुंबी जलमें डुबत नहीं, तैसे वह आ-पदामें डुबत नहीं. हे रामजी ! वह विचारसंयुक्त जो करता है, देता है, लेता है, सो सब क्रिया सिद्धताका कारणरूप होती है. धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष ये विचा-रकी दृढता करके सिद्ध होते हैं; विचाररूपी कल्पवृक्ष है तिसमें जिसका अभ्यास होता है, सोई पदार्थकी सिद्धिको पावता है.

हे रामजी! शुद्ध ब्रह्मका विचार ग्रहणकर आत्म-ज्ञानकों प्राप्त होहु; जैसे दीपकसोंकर पदार्थका ज्ञान होता है, तैसे पुरुष विचारसोंकर सत्य असत्यकों जा-नता है; असत्यकों त्यागकर सत्यकी ओर यत्न किया है, सो विचारवान् कहते हैं. हे रामजी ! संसाररूपी समुद्रविषे आपदारूपी तरंग चलते हैं, जो विचारवान्

दृश्यकों साक्षीभूत होकर देखता है; अरु संसारके भावअभावविषे ज्योंका त्यों रहता है; अरु उदयअस्ततें रहित निःसंगरूप है; जैसे समुद्र जलकरि पूर्ण है, तैसे विचारवान् आत्मतत्त्वकरि पूर्ण है; जैसे अंध कूपविषे पऱ्या हुवा हस्तके बलकरि निकसता है, तैसे संसाररूपी अंधकूपमें गिऱ्या हुवा विचारके आश्रय होकर विचारवान् पुरुष निकसनेकों समर्थ होता है.

हे रामजी! राज्यकों जो कोउ कष्ट आय प्राप्ति होता है; तब उह विचार करके यत्न करते हैं, तब कष्ट निवृत्त हो जाता है, तातें तूं विचार कर देख जो किसीकों कष्ट प्राप्त होता है सो विचारतें मिटता है, तुम भी विचारका आश्रय करके सिद्धिकों प्राप्त होहु; सो विचार इसकर प्राप्त होता है, जो वेद अरु वेदांतके सिद्धांतकों श्रवण करे, पाठ करे, भले प्रकार विचारेगा तब विचारकी दृढताकर आत्मतत्त्वकों प्राप्त होवैगा; जैसे प्रकाशकर पदार्थका ज्ञान होता है, तैसे गुरु अरु शास्त्रके वचनकर तत्त्वज्ञान होता है; जैसे प्रकाशमें अंधको पदार्थकी प्राप्ति नहीं होती है, तैसे गुरु अरु शास्त्रसों जो विचारतें शून्य होवै, तिसकों आत्मपदकी प्राप्ति नहीं होती. हे रामजी! जो विचाररूपी नेत्रकर संपन्न है, सोई देखते है; अरु विचाररूपी नेत्रतें जो रहित है, सो अंध है.

हे रामजी ! ऐसा विचार कर, जो मैं कवन हौं, अरु यह जगत क्या है ? अरु इसकी उत्पत्ति कैसी हुई है; अरु लीन कैसे होता है, इस प्रकार संत अरु शास्त्रके अनुसार विचार कर सत्यको सत्य जान, अरु असत्यकों असत्य जान, जिसकों असत्य जान्या है, तिसका त्याग कर, अरु सत्यमें स्थित होय इसीका नाम विचार है; इस विचारकर आत्मपदकी प्राप्ति होती है हे रामजी ! विचाररूपी दिव्य दृष्टि जिसकों प्राप्त भई है, तिसकों सब पदार्थका ज्ञान होता है, विचारसों आत्मपदकी प्राप्ति होती है, तिसकों पायेते परिपूर्ण होता है, फिर शुभ अशुभ संसारमे चलायमान नहीं होता, ज्योंका त्यों रहता है, जबलग प्रारब्धवेग होता है, तबलग शरीरकी चेष्टा होती है; जबलग अपनी इच्छा होवे, तबलग शरीरकी चेष्टा करै, बहुरि शरीरको त्यागकर केवल शुद्धरूप हो जाता है.

ताते हे रामजी ! ब्रह्मविचारको आश्रय कर, संसारसमुद्रकों तर जा, जो कोउ रोगी होता है, सो एता रुदन नहीं करता, जेता कछु रुदन विचाररहित पुरुष करता है, जिसको कष्ट प्राप्त होता है, सो भी एता रुदन नहीं करता. हे रामजी ! जो पुरुष विचारतें शून्य है, तिनकों सब आपदा आय प्राप्त होती हैं; जैसे सब नदी स्वभावसों समुद्रमें आय प्रवेश करती हैं, तैसे अ-

विचारमें सब आपदा आय प्रवेश करती हैं. हे रामजी! कीचका कीट होना सो भला है, अरु गर्त्तका कटक होना सो भी भला है, अरु आंधेरे बिलमें सर्प होना सो भला है, परंतु विचारतें रहित होना सो तुच्छ है, जो पुरुष विचारतें रहित है, अरु भोगमें दौरता है, सो श्वान है.

हे रामजी! विचारतें रहित पुरुष बडे कष्टकों पावता है, तातें एक क्षणहु विचारतें रहित नहीं रहना; विचारसों दृढ होकर निर्भय रहना; जो मैं कवन हों, अरु दृश्य क्या है, ऐसा विचार करके सत्यरूप आत्माकों जानकर दृश्यका त्याग करना. हे रामजी! जो पुरुष विचारवान् है, सो संसारभोगमें नहीं गिर जाता; अरु सत्यमेंई स्थित होता है, विचार जब स्थिर होता है, तब तिसमें तत्त्वज्ञान होता है; तब तत्त्वज्ञानतें विश्राम होता है, विश्रामते चित्तका उपशम होता है, अरु चित्तके उपशमतें दुःखनाश होता है.

इति श्रीयोगवासिष्ठे मुमुक्षुप्रकरणे विचारनिरूपणं नाम चतुर्दशः सर्गः ॥ १४ ॥

पंचदशः सर्गः १५.

अथ संतोषवर्णन

वसिष्ठ उवाच— हे अविचार शत्रुके नाशकर्त्ता

रामजी ! जिस पुरुषकों संतोष प्राप्त भया है, सो परम आनंदित हुवा है, अरु त्रिलोकीका ऐश्वर्य उसकों तृणकी नांई तुच्छ भासता है. हे रामजी ! जो आनंद अमृतपान कियेतें नहीं होता है; औ जो आनंद त्रिलोकके राज्यकर नहीं होता, तैसा आनंद संतोषवानकों होता है. हे रामजी ! इच्छारूपी रात्रि हैं; अरु सो हृदयरूपी कमलकों सकुचाय देती है; औ जब संतोषरूपी सूर्य उदय होता है, तब इच्छारूपी रात्रिका अभाव हो जाता है; जैसे क्षीरसमुद्र उज्ज्वलताकरके सोहता है, तैसे संतोषवानकी कांति सुशोभित होती है.

हे रामजी ! त्रिलोकीके राजाकी इच्छा निवृत्त न भई, तब सो दरिद्री है, अरु जो निर्धन हैं; औ सो संतोषवान् है, सो सबका ईश्वर है; संतोष तिसकाई नाम है; श्रवणकरि जो अप्राप्त वस्तुकी इच्छा न करे; अरु प्राप्त होई इष्ट अनिष्टमें राग दोष न धरे, इसका नाम संतोष है; संतोष सोई परम पद है; संतोषवान् पुरुष सदा आनंदरूप है, अरु आत्मस्थितिसों तृप्त हुवा है, तिसकों और इच्छा कछु नहीं स्फुरती, अरु संतुष्टताकर तिसका हृदय प्रफुल्लित हुवा है, जैसे सूर्यके उदय हुवे सूर्यमुखी कमल प्रफुल्लित होता है, तैसे संतोषवान् प्रफुल्लित हो जाता है, जो अप्राप्त वस्तु हैं, तिनकी इच्छा नहीं करता; अरु जो अनिच्छित प्राप्त भई है,

तिसकों यथाशास्त्र क्रम करके ग्रहण करता है, तिसका नाम संतोषवान् है, जैसे पूर्णमासीका चंद्रमा अमृतकर पूर्ण होता है, तैसे संतोषवानका हृदय संतुष्टता करके पूर्ण होता है अरु जो संतोषतें रहित है, तिसके हृदयरूपी वनमें सदा दुःख अरु चिंतारूपी फूल फल उत्पन्न होतेई हैं.

हे रामजी! जाका चित्त संतोषतें रहित है, तिसकों नानाप्रकारकी इच्छा जैसे समुद्रमें नानाप्रकारके तरंग होते हैं, तैसे उपजती है; संतुष्टात्मा परम आनंदित है, तिसकों जगतके पदार्थमें हेयोपादेयबुद्धि नहीं होती. हे रामजी! जैसा आनंद संतोषवानकों होता है, तैसा आनंद अष्टसिद्धिके ऐश्वर्यकरके भी नहीं होता, अरु अमृतके पान कियेतें भी नहीं होता, संतोषवान् सदा शांतिरूप है; औ सदा निर्मल रहता है, इच्छारूपी धूर सर्वदा उडती थी सो संतोषरूपी वर्षाकर शांत हो गई है; तिस कारणतें संतोषवान् निर्मल है.

हे रामजी! संतोषवान् पुरुष सबकों प्यारा लगता है, जैसे आंबका परिपक्व फल सुंदर होता है, अरु सबकों प्यारा लगता है; तैसा संतोषवान् पुरुष सबकों प्यारा लगता है; अरु स्तुति करने योग्य है; जिस पुरुषकों संतोष प्राप्त भया है, तिसकों परम लाभ भया है. हे रामजी! जहां संतोष है, तहां इच्छा नहीं रहती

है; अरु संतोषवान् भोगमें दीन होकर नहीं रहता; वह उदारात्मा है, सर्वदा आनंदकर तृप्त रहता है, जैसे मेघ पवनके आयेतें नष्ट हो जाता है, तैसे संतोषके आयेतें इच्छा नष्ट हो जाती है; अरु जो संतोषवान् पुरुष है, तिसकों देवता, ऋषीश्वर, सब नमस्कार करते हैं, अरु धन्य धन्य कहते हैं. हे रामजी ! जब इस संतोषकों धरैगा, तब परम शोभा पावैगा.

इति श्रीयोगवासिष्ठे मुमुक्षुप्रकरणे संतोषनिरूपण नाम पंचदशः सर्गः ॥ १५ ॥

षोडशः सर्गः १६.

अथ साधुसंगवर्णन

वसिष्ठ उवाच—हे रामजी ! अवर जेते कछु दानतीर्थादिक साधन हैं, तिनकर आत्मपदकी प्राप्ति नहीं होती; साधुसंगकर आत्मपदकी प्राप्ति होती है, साधुसंगरूपी एक वृक्ष है, तिसका फूल आत्मज्ञान है, जिस पुरुषनें फूलकी इच्छा करी है; सो अनुभवरूपी फलकों पावता है. हे रामजी ! जो पुरुष आत्मानंदतें रहित है, सो संतसंगकर आत्मानंदसों पूर्ण होत है; अरु अज्ञानकरके जो मृत्युकों पावता है, सो संतके संगतें ज्ञान पायकर अमर होता है; अरु जो आपदाकरके

दुःखी है, सो संतके संगकर संपदाकों पावता है; आपदारूपी कमलका नाश करनहारी सत्संगरूपी बरफकी वर्षा है; संतसंगसोंकर आत्मबुद्धि प्राप्त होती है. तिसकर मृत्युतें रहित होता है; औ सब दुःखते रहित होता है; अरु परमानंदकों प्राप्त होता है.

हे रामजी ! संतकी संगतीकर इसके हृदयमे ज्ञानरूपी दीपक जलता है, तिसकर अज्ञानरूपी तम नष्ट हो जाता है; अरु बडे ऐश्वर्यकों प्राप्त होता है; बहुरि किसी भोगपदार्थकी इच्छा नहीं रहती अरु बोधवान् होता है; सबतें उत्तम पदमें विराजता है; जैसे कल्पवृक्षके निकट गयेतें वांछित फलकी प्राप्ति होती है, तैसे संसारसमुद्रके पार उतारनेहारे संतजन हैं; जैसे धीवर नौकाकरके पार लगता है, तैसे संतजन युक्ति करके संसारसमुद्रतें पार करते हैं, अरु मोहरूपी मेघका नाश करनहारा संतका संग पवन है, जिनकों देहादिक अनात्मासों स्नेह नष्ट भया है, अरु शुद्ध आत्माविषे जाकी स्थिति है; तिसकर तृप्त भये हैं, बहुरि संसारके इष्टअनिष्टतें जाकी चलायमान बुद्धि नहीं होती, सदा समताभावमें स्थित रहे है, ऐसे संसारसमुद्रके पार उतारनेमें पुल जैसे, अरु आपदारूपी वेलीकों जडसमेत नाश करनहारे हैं.

हे रामजी ! संतजन प्रकाशरूप हैं; तिनके संगतें

पदार्थकी प्राप्ति होती है, अरु जो अपने पुरुषार्थरूपी नेत्रतें हीन हुवे हैं, इसकों पदार्थकी प्राप्ति नहीं होती; जिन पुरुषनें सत्संगका त्याग किया है, सो नरकरूपी अग्निमें लकडीकी नांई जरेंगे; अरु जिन पुरुषनें सत्संग किया है, तिनकों नरकरूपी अग्निका नाश करनहारा सत्संगरूपी मेघ है. हे रामजी ! सत्संगरूपी गंगा है; जाने सत्संगरूपी गंगाका स्नान किया ताकों वहुरि तप, दान, आदि साधनका प्रयोजन नहीं; उह सत्संग करके परमगतीकों प्राप्त होनेका है; ताते अवर सब उपाय त्यागकर सत्संगकों खोजनां, जैसे निर्धन चिंतामणि आदिक धनको खोजता है, तैसे मुमुक्षु सत्संगकों खोजता है; आध्यात्मिकादि तीन तापसों जलता है, तिसकों शीतल करनेहारा सत्संग है, जैसे तपी हुई पृथ्वी मेघकर शीतल होती है, तैसे सत्संगकर हृदय शीतल होता है.

हे रामजी ! मोहरूपी वृक्षका नाश करनहारा सत्संगरूप कुहाडा है; सत्संग करके यह पुरुष अविनाशी पदकों प्राप्त होता है, जिस पदके पायेतें और पावनेकी इच्छा नहीं रहती; ऐसा सबते उत्तम सत्संग है; जैसे सब अप्सरानतें लक्ष्मी उत्तम है, तैसे सत्सगकर्त्ता सबतें उत्तम है; ताते अपने कल्याणके निमित्त सत्संग करना तुमकों योग्य है. हे रामजी ! यह जो चारो मोक्षके द्वा-

रपाल हैं; सो तुझकों कहे; जा पुरुषनें इनकेसाथ प्रीति करी है, सो शीघ्र आत्मपदकों प्राप्त होहिंगे; औ जो इनकी सेवा नहीं करते सो मोक्षकों प्राप्त नहीं होते. हे रामजी ! इन चारोंमेंतें एकहु जहां आता है, तहां तीनों औरहु आय जाते हैं; जहां समुद्र रहता है, तहां सब नदी आय जाती है; तैसे जहां शम आता है, तहां संतोष, विचार, अरु सत्संग ये तीनों आय जाते हैं, जहां साधुसंगम होता है, तहां संतोष, विचार अरु शम ये तीनों आय जाते हैं; जहां कल्पवृक्ष रहता है, तहां सब पदार्थ आय स्थित होते हैं; अरु जहां संतोष आता है, तहां शम, विचार, सत्संग, ये तीनों आय जाते हैं; जैसे पूर्णमासीके चंद्रमामें गुणकला सब इकठ्ठी हो जाती है, तैसे जहां संतोष आता है, तहां और तीनों आय जाते हैं; अरु जहां विचार आता है, तहां संतोष, उपशम, अरु सत्संग ये आय रहते हैं; जैसे श्रेष्ठ मंत्रीसोंकर राज्यलक्ष्मी आय स्थित होती है, तैसे जहां विचार होता है, तहां और भी तीनों आते हैं; तातें हे रामजी! जहां चारों इकट्ठे होते है, तहां परमश्रेष्ठता जानना; औ हे रामजी ! चारों न होहीं, तौ एकका तौ अवश्य आश्रय करना; जब एक आवैगा तब चारों आय स्थित होवैंगे; मोक्षकी होनेके यत्न परम

श्लोकः

संतोषः परमो लाभः सत्संगः परमं धनं ॥
विचारः परमं ज्ञानं शमं च परमं सुखम् ॥ १ ॥

हे रामजी ! यह परम कल्याणकर्ता, सो इन चारोंकरि संपन्न है, तिसकी ब्रह्मादिक स्तुति करते हैं, तातें दंतकों दंत लगाय इनका आश्रय करके मनकों वशी कर ले.

हे रामजी ! मनरूपी हस्ती विचाररूपी अंकुश करके वश होता है, अरु मनरूपी वनमें वासनारूपी नदी चलती है, तिसके शुभ अशुभ दो किनारे हैं; अरु पुरुपार्थ करना यह है, जो अशुभकी औरतें रोकके शुभकी और चलावना; जब अंतसुर्ख आत्माके सन्मुख वृत्तिका प्रवाह होवैगा, तब तूं परम पदकों प्राप्त होवैगा. हे रामजी ! प्रथम तो पुरुपार्थ करना नहीं है, जो अविचाररूपी ऊंचाईकों दूर करना; जब अविचाररूपी वेट दूर होवैगा, तब आपहि प्रवाह चलैगा. हे रामजी ! दृश्यकी और जो प्रवाह चलता है, सो बंधनका कारण है; जब आत्माकी और अंतर्मुख प्रवाह होवै, तब मोक्षका कारण होय जाय; आगे जो तेरी इच्छा होवै सो कर.

इति श्रीयोगवासिष्ठे मुमुक्षुप्रकरणे साधुसंगनिरूपणं नाम षोडशः सर्गः ॥ १६ ॥

रपाल हैं; सो तुझकों कहे; जा पुरुषनें इनकेसाथ प्रीति करी है, सो शीघ्र आत्मपदकों प्राप्त होहिंगे; औ जो इनकी सेवा नहीं करते सो मोक्षकों प्राप्त नहीं होते. हे रामजी ! इन चारोंमेंतें एकहु जहां आता है, तहां तीनों औरहु आय जाते हैं; जहां समुद्र रहता है, तहां सब नदी आय जाती है; तैसे जहां शम आता है, तहां संतोष, विचार, अरु सत्संग ये तीनों आय जाते हैं, जहां साधुसंगम होता है, तहां संतोष, विचार अरु शम ये तीनों आय जाते हैं; जहां कल्पवृक्ष रहता है, तहां सब पदार्थ आय स्थित होते हैं; अरु जहां संतोष आता है, तहां शम, विचार, सत्संग, ये तीनों आय जाते हैं; जैसे पूर्णमासीके चंद्रमामें गुणकला सब इकट्ठी हो जाती है, तैसे जहां संतोष आता हैं, तहां और तीनों आय जाते हैं; अरु जहां विचार आता है, तहां संतोष, उपशम, अरु सत्संग ये आय रहते हैं; जैसे श्रेष्ठ मंत्रीसोंकर राज्यलक्ष्मी आय स्थित होती है, तैसे जहां विचार होता है, तहां और भी तीनों आते हैं; तातें हे रामजी ! जहां चारों इकट्ठे होते हैं, तहां परमश्रेष्ठता जानना; औ हे रामजी ! चारों न होहीं, तौं एकका तौ अवश्य आश्रय करना; जब एक आवैगा तब चारों आय स्थित होवैंगे; मोक्षकी प्राप्ति होनेके यह चार परम साधन हैं; और उपायसों मुक्ति होनेकी नहीं.

होती. हे रामजी ! तैसे पुण्यवानकी इच्छा श्रवणमें होती है; अरु अधमकी इच्छा नहीं होती; जो कोई मोक्षोपायक यह रामायणका अध्ययन करैगा, अथवा निष्काम संतके मुखतें श्रद्धायुक्त श्रवण करैगा अरु आदितें लेकर अंतपर्यंत एकत्रभाव होकर विचारैगा, तब तिसका संसारभ्रम निवृत्त हो जावैगा, जैसे जेवरीके जाननेते सर्पका भ्रम दूर हो जाता है, तैसे अद्वैतात्मा तत्त्वके जाननेतें तिसका संसारभ्रम नष्ट हो जावैगा.

सो इस मोक्षोपायक शास्त्रके वत्तीस सहस्र श्लोक हैं, अरु पट् प्रकरण हैं.

प्रथम वैराग्यप्रकरण है, सो वैराग्यका परम कारण है हे रामजी ! मरुस्थलमें वृक्ष नहीं होता, परंतु बडी वर्षा होवै तब तहां वृक्ष होता है; तैसे अज्ञानीका हृदय मरुस्थलकी नांई है, तिनमें वैराग्यरूपी वृक्ष नही होता, परंतु यह शास्त्ररूपी जो बडी वर्षा होवै, तिसकर वैराग्यरूपी वृक्ष उत्पन्न होता है; तिसके एक सहस्र पांचसो श्लोक हैं, तिसके अनंतर.

मुमुक्षुव्यवहारप्रकरण है, तिसमें परम निर्मल वचन हैं, तिसकरके मलीन मणि हुई ताका मार्जन कियेतें उज्ज्वल हो आती है, तैसे यह वचनतें ज्ञानीका हृदय निर्मल होता है, अरु विचारके बलतें आत्मपद पाव-

नेकों समर्थ होता है; तिसके एक सहस्र श्लोक हैं; तिसके अनंतर.

उत्पत्तिप्रकरण है, तिसके पंच सहस्र श्लोक हैं; तिसमें बडी सुंदर कथा दृष्टांतसहित कही हैं, जिस विचारतें जगतका सत्यताभाव मनतें चलायमान रहता है; अर्थ यह जो जगतका अत्यंत अभाव जान परता है. हे रामजी ! यह जगतमें जो मनुष्य, देवता, दैत्य, पर्वत, नदी आदि स्वर्गलोक, पृथ्वी, आप, तेज, वायु, आकाश आदि स्थावर जंगम भासता है, सो अज्ञानकरके है; अरु इसकी उत्पत्ति कैसे भई है; जैसे जेवरीमें सर्प होता है, अरु छीपमें रूपा होता है, अरु सूर्यके किरणमें जल दिखता है; आकाशमें तरुवर दिखता है; औ जैसे दूसरा चंद्रमा दिखता है; जैसे गंधर्वनगर भासते हैं, मनोराज्यकी सृष्टि भासती है; अरु संकल्पपूर होता है, अरु सुवर्णमें भूपण होता है; समुद्रमें तरंग होता है; आकाशमें नीलता दिखती है; जैसे नौकामें बैठेतें किनारेके वृक्ष पर्वत चलते दृष्ट आते हैं; अरु बादरके चलेतें चंद्रमा धावता दिखता है, औ स्तंभमें पूतली भासती है; भविष्यत नगरतें आदि लेकर असत्य पदार्थ जैसे सत्य भासते हैं; तैसे सब जगत आकाशरूप है; अज्ञानकरके अर्थाकार भासता है; सो अज्ञानकरके उत्पत्ति दिखाती है, अरु ज्ञानकरके

लीन हो जाता है; जैसे निद्रामें स्वप्नसृष्टिकी उत्पत्ति होती है, अरु जागेतें निवृत्त हो जाती है, तैसे अविद्याकरके जगतकी उत्पत्ति होती है; अरु सम्यक्ज्ञानकरके निवृत्ति हो जाती है, सो अविद्या कछु वस्तुहु नहीं, सर्व ब्रह्म चिदाकाशरूप है, सो शुद्ध है, अनंत है; परमानंदस्वरूप है, तिसमें न जगत उपजता है, न लीन होता है; ज्योंकी त्यों आत्मसत्ता अपने आपविषे स्थित है; तिसमें जगत ऐसा है, जैसे भीतमें चित्र होता है; जैसे स्तंभमें पूतरियां होती हैं, अरु हुवेबिना भासती हैं. तैसे यह सृष्टि मनमें रही है, वास्तवतें कछु बनी नहीं, सब आकारूप है, जब चित्तसंवेदन स्पंदरूप होता है, तब नानाप्रकारका जगत होयके भासता है; अरु जब निस्पंद होता है; तब जगत मिट जाता है; इस प्रकार जगतकी उत्पत्ति कही है; तिसके अनंतर.

स्थितिप्रकरण है, तिसमें जगतकी स्थिति कही है; जैसे इंद्रका धनुष्य आकाशरूप है औ अविचारकरके रंगसहित भासता है, जैसे सूर्यकी किरणमें जल भासता है, जैसे जेवरीमें सर्प भासता है, सो सब सम्यक्दृष्टिकरके निवृत्त होता है; तैसे अज्ञानकरके जगतकी प्रतीति होती है, सो मनोराज्यकरके जगत रची लेता है सो कछु उत्पन्न हुवा नहीं है; तैसे यह जगत संकल्पमात्र है; जबलग मनोराज्य है, तबलग वह नगर

होता है, जब मनोराज्यका अभाव हुवा, तब नगरका अभाव हो जाता है, जबलग अज्ञान होता है तबलग जगतकी उत्पत्ति होती है; जब संकल्पका लय हुवा, तब जगतका अभाव हो जाता है; जैसे ब्रह्माके दश पुत्रकी सृष्टि संकल्पकरके स्थित भई, तैसे यह जगत भी है; कोउ पदार्थ अर्थरूप नहीं. हे रामजी ! इस प्रकार स्थितिप्रकरण कह्या है; तिसके तीन सहस्र श्लोक हैं. तिसके विचारकरके जगतकी सत्यता जात रहती है; तिसके अनंतर.

उपशमप्रकरण है; तिसके पंच सहस्र श्लोक हैं; तिसके विचारतें अहंममत्वादिक वासना लीन हो जाती हैं, जैसे स्वप्नतें जागेतें वासना जात रहती है, तैसे विचार कियेतें अहंतादिक वासना लीन हो जाती हैं; काहेतें जो उसके निश्चयमें जगत नहीं रहता; जैसे एक पुरुष सोया है, तिसकों स्वप्नमें जगत भासता है, औ उसके निकट जो जाग्रत पुरुष है तिसके स्वप्नका जगत आकाशरूप है; जब आकाशरूप हुवा तब वासना कैसे रहै? जब वासना नष्ट भई, तब मनका उपशम हो जाता है, तब देखनेमात्र उसकी सब चेष्टा होती है, औ इसके मनमें अर्थरूप इच्छा नहीं होती; जैसे अग्निकी मूर्ति देखनेमात्र होती है, अर्थाकार नहीं होती; तैसे उसकी चेष्टा होती है. हे रामजी! जब म-

नतें इच्छा नष्ट होती है, तब मन भी निर्वाण हो जाता है; जैसे तेलतें रहित दीपक निर्वाण होता है, तैसे इच्छातें रहित मन निर्वाण होता है; इस प्रकार उपशम प्रकरण है; तिसके अनंतर.

निर्वाणप्रकरण है; जो शेप है तिसमें परम निर्वाण वचन कहे हैं; अज्ञानकरके चित्त अरु चित्तका संबंध है; सो विचार कियेतें निर्वाण हो जाता है; जैसे शरत्कालमें मेघके अभावते शुद्ध आकाश होता है, तैसे पुरुष विचारकरके निर्मल होता है. हे रामजी! अहंकाररूपी पिशाच है, सो विचार करके नष्ट होता है, जेती कछु इच्छा स्फूर्ति है; सो निर्वाण हो जाती है, जैसे पथ्थरकी शिला स्फुरनेतें रहित होती है तैसे ज्ञानवान इच्छातें रहित होता है; तव जेती कछु जगतकी यात्रा है, सो इसकों होय चुकती है, जो कछु करना है सो कर चुकता है हे रामजी! शरीर होतहीं उह पुरुष अशरीरी हो जाता है, अरु नानाप्रकारका जगत उसकों नहीं भासता; जगतकी नेततें वह रहित होता है; अहंममत्वादिक तमरूप जगत तिसको नहीं भासता है; जैसे सूर्यकों अंधकार दृष्ट नहीं आवता, तैसे उसकों जगत दृष्टिमें नहीं आता, अरु वडे पदकों प्राप्त होता है; जैसे सुमेरु पर्वतके किसी कोनेमें कमल होता है तिसकेपर भौंरे स्थित रहते हैं; तैसे ब्रह्मके किसी

कोनेमें जगत तुषाररूप है अरु जीवरूपी भौंरे तिसपर स्थित हैं; उह पुरुष अचिंत्य चिन्मात्र है, रूप, अवलोकन, मन तिसका आकाशरूप हो जाता है, तिस पदकों वह प्राप्त होता है, जिस पदकी उपमायोग्य ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र, कहनेकों समर्थ नहीं, ऐसे अनुपमताके सदृश कोउ नहीं है.

इति श्रीयोगवासिष्ठे मुमुक्षुप्रकरणे पट्प्रकरणविवरणं नाम सप्तदशः सर्गः ॥ १७ ॥

अष्टादशः सर्गः १८.

अथ दृष्टांतवर्णनं.

वसिष्ठ उवाच—हे रामजी ! यह परम उत्तम वाक्य है, उसकों विचारनहारा उत्तम पदको प्राप्त होता है; जैसे उत्तम खेतमें उत्तम वीज वोयेते उत्तम फलकी उत्पत्ति होती है, तैसे इसकों विचारनहारा उत्तम पदकों प्राप्त होता है; यह वाक्य कैसे है, जो युक्तिपूर्वक वाक्य हैं; औ युक्तितें रहित वाक्य आर्प भी होहीं, तो ति[illegible]ग करियें; औ युक्तिपूर्वक वाक्य अंगी-

ार करियें; औ पिताके कूपका खारा जल होवै तौ सका त्याग करियें; औ निकट मिष्ट जलका कूप वै तब तिनका पान करियें; तैसे बडे अरु छोटेका चार न करियें; युक्तिपूर्वक वचनका अंगीकार क- ना. हे रामजी ! मेरे वचन सब युक्तिपूर्वक हैं, अरु धके परम कारण हैं; जो पुरुष एकाग्र होयके इस स्त्रकों आदितें अंतपर्यंत पढे अथवा पंडितसों श्रवण रके विचारै, तब तिसकी बुद्धि संस्कारित होवै.

प्रथम वैराग्यप्रकरणकों विचारैगा, तब वैराग्य उप- जैगा; जेते कछु जगतके रमणीय भोग पदार्थ हैं, तिन को विरस जानैगा, अरु किसी पदार्थकी वांछा न करै- गा; जब भोगमें वैराग्य होता है, तब शांतिरूप आत्म- तत्त्वमें प्रतीति होती है; जब विचारकरके बुद्धि संस्का- रित होवैगी, तब शास्त्रका सिद्धांत बुद्धिमें आय स्थित होवैगा; औ ससारके विकाररहित बुद्धि निर्मल होवै- गी, जैसे शरत्कालमें बादरके अभाव हुवेतें आकाश सब औरतें स्वच्छ होता है, तैसे बुद्धि निर्मल होवैगी; बहुरि आधिव्याधिकी पीडा उसकों न होवैगी हे रा- मजी ! ज्यों ज्यों विचार दृढ होवैगा; त्यों त्यों शांता- त्मा होवैगा, तातें जेते कछु संसारके यत्न हैं, तिनका त्याग कर, इस शास्त्रकों वारंवार विचारेतें चैतन्यसत्ता उदय होवैगी त्यों त्यों लोभमोहादिक विकारकी,सत्ता

नष्ट होवैगी. जैसे ज्यों ज्यों सूर्यका उदय होता है, त्यों त्यों अंधकार नष्ट होता है; तैसे विकार नष्ट होवैगा. सब तिस पदकी प्राप्ति होवैगी; जिसके पाये संसारके क्षोभ मिट जायेंगे. जैसे शरत्कालमें मेघ नष्ट हो जाता है, तैसे संसारके क्षोभ मिट जाते हैं.

हे रामजी ! ज्ञानवान् पुरुषकों संसारके राग दोष वेधी नहीं शकते, जैसे जिस पुरुषनें कवच पहिन्या होय तिसकों बाण वेधी नहीं शकते; उसकों भोगकी इच्छा नहीं रहती; जब विषयभोग विद्यमान आय रहैं, तब तिनकों विषयभूत जानके बुद्धि ग्रहण नहीं करती; अर्थ जानकर बाहिर नहीं निकसती; अंतर आत्मामेंई स्थित रहती है; जैसे पतिव्रता स्त्री अपने अंतःपुरतें बाहिर नहीं निकसती, तैसे ताकी बुद्धि अंतरतें बाहिर नहीं निकसती. हे रामजी ! बाहिरतें तो उह भी प्रकृतिजन्यकी नांई दृष्ट आते हैं; जो कछु अनिच्छित प्राप्त होते हैं, तिसकों भुगतता हुआ दृष्टिमें आता है; औ अंतरतें उसकों रागदोष नहीं फुरता.

हे रामजी ! जेता कछु जगतकी उत्पत्तिप्रलयका क्षोभ है, सो ज्ञानवानकों नष्ट नहिं कर शकता; जैसे चित्रकी वेलीकों अंधी चलाय नहीं शकती, तैसे उसकों जगतका दुःख चलाय नहीं शकता; अरु संसारकी औरतें जड हो जाता है; वृक्षकी नांई गंभीर हो

जाता है, अरु पर्वतकी नांई स्थिर हो जाता है, अरु चंद्रमाकी नांई शीतल हो जाता है. हे रामजी! सो आत्मज्ञानकरके ऐसे पदकों प्राप्त होता है; जिसके पायेतें और कछु पावने योग्य नहीं रहता; आत्मज्ञानका कारण यह मोक्षोपाय शास्त्र है, जामें नानाप्रकारके दृष्टांत कहे हैं; जो वस्तु अपरिच्छिन्न होवै, अरु देखनेमें न आई होई; तिसका न्याय देखनेमें होवै; तिसको दृष्टांतकर विधिपूर्वक समुझावै उसका नाम दृष्टांत है. हे रामजी! यह जगत कार्यकारणतें रहित है, अरु आत्मा जगतकी एकता कैसे होवै; तातें जो मैं दृष्टांत कहौंगा, तिसका एक अंश अंगीकार करनां; सब देशकर अंगीकार नहीं करना. हे रामजी! कार्यकारणकी कल्पना मूर्खनें करी है, तिसकों निषेधनेनिमित्त मैं स्वप्नदृष्टांत कहौं हौं, सो समुझनेते तेरे मनका संशय नष्ट हो जावैगा; दृग् अरु दृश्यका भेद मूर्खको भासता है; तिसके दूर करनेके अर्थ स्वप्नदृष्टांत कहौंगा, तिसके विचारनेकरि मिथ्या विभागकल्पनाका अभाव होता है. हे रामजी! ऐसी कल्पनाका नाशकर्त्ता यह मेरा मोक्ष उपाय शास्त्र है; जो पुरुष आदिते अंतपर्यंत विचारैगा सो संस्कारी होवैगा; जो पदपदार्थकों जाननहारा होवै, अरु दृश्यकों वारंवार विचारै तब तिसका दृश्यभ्रम नाश पावै, इस शास्त्रके विचारविषे अवर

किसी तीर्थ, तप, दान आदिककी अपेक्षा नहीं; स्थान होवै तहां बैठे; जैसा भोजन गृहविषे होव करै; अरु वारंवार इसका विचार करै तव अज्ञान हो जावै, अरु आत्मपदकी प्राप्ति होवै. हे रामजी! शास्त्र प्रकाशरूप है, जैसे अंधकारविषे पदार्थ न खता; अरु दीपकके प्रकाशकर चक्षुसहित ... तैसे शास्त्ररूपी दीपक विचाररूपी नेत्रसहित तव आत्मपदकी प्राप्ति होवै.

हे रामजी! आत्मज्ञान विचारविना वर अरु शाप करि प्राप्त नहीं होता; जव विचारकरि दृढ अभ्यास करिये तव प्राप्त होता है; तातें मोक्ष उपाय जो परम पावन शास्त्र, तिसके विचारतें जगतभ्रम नष्ट हो जावैगा; जगकों देखते देखते जगतभाव मिट जावैगा; जैसे सर्पकी मूर्ति लिखी होती है, अरु अविचार करके तिसतें भय पाता है; जव विचार करी देखियें तव सर्पभ्रम मिट जाता है, सो सर्पका आकार दृष्ट आता है, परंतु उसका भय मिट जाता है; तैसे यह जगतभ्रम विचार कियेतें नष्ट हो जाता है, अरु जन्ममरणका भय नहीं रहता. हे रामजी! जन्ममरणका भय भी वडा दुःख है, परंतु इस शास्त्रके विचारतें नष्ट हो जाता है; जिनहुनें इसका विचार त्याग्या है सो माताके गर्भविषे कीट होवैंगे अरु कष्टतें नहीं छूटेंगे अरु

पुरुष आत्मपदकों प्राप्त होवैगा; अरु जो श्रेष्ठ ज्ञानी है; तिसका सृष्टि अनंत है, तिसको अपना रूप भासता है, कोउ पदार्थ आत्मातें भिन्न नहीं भासता; जैसे जिसकों जलका ज्ञान हुवा है; तिसकों लहरी आवर्त्त सब जलरूपही भासता है, तैसे ज्ञानवानकों सब आत्मरूप भासता है, अरु इंद्रियहुके इष्टअनिष्टकी प्राप्तिमें इच्छा दोष नहीं करता, सदा एकरस मनके संकल्पतें रहित शांतिरूप होता है; जैसे मंदराचल पर्वतके निकसेतें क्षीरसमुद्र शांतिकों प्राप्त भया, तैसे संकल्पविकल्परहित यह पुरुष शांतिरूप होता है.

हे रामजी ! अवर जो तेज होता है; सो दाहक होता है, परंतु ज्ञानरूपी तेज जिस घटविषे उदय होता है, सो शीतल शांतिरूप होता है, वहुरी तिसविषे संसारका विकार कोउ नहीं रहता; जैसे कलियुगविषे शिखावाला तारा उदय होता है, सो कलियुगके अभाव हुवे नहीं उदय होता, तैसे ज्ञानवानके चित्तमें विकार उत्पन्न नहीं होता.

हे रामजी ! संसारभ्रम आत्माके प्रमादकरि उत्पन्न होता है, सो आत्मज्ञानके प्राप्त भये यत्नविना शांत हो जाता है; फुल पत्र काटणेते भी कछु यत्न होता है, परंतु आत्माके पावनेमें कछु यत्न नहीं होता; काहेते जो बोधरूपी बोधही करके जानता है. हे रामजी !

जो जानने मात्र ज्ञानस्वरूप है, तिसमें स्थित होनेका क्या यत्न है; आत्मा शुद्ध अद्वैतरूपी है; अरु जगत भ्रममात्र है; जो पूर्व अपर विचार कियेतें जिसकी सत्यता न पाइतें तिसकों भ्रममात्र जानियें, अरु पूर्व अपर विचार कियेतें सत्य होवै, तिसका रूप जानियें; सो इस जगतकी सत्यता आदि अंतविषे नहीं है, तातें स्वप्नवत् है, जैसे स्वप्न आदि अंतमें कछु है नहीं, तैसे जाग्रत भी आदि अंतमें नहीं हैं; तातें जाग्रत स्वप्न दोनों तुल्य हैं.

हे रामजी ! यह वार्त्ता बालक भी जानता है; जो आदि अंतमें जिसकी सत्यता न पाईयें, सो स्वप्नवत् है, जो आदि भी न होवै अरु अंत भी न रहै, तिसकों मध्यमें भी असत्य जानियें; तिसविषे दृष्टांत कहे हैं; संकल्पपुरीवत् ध्यान नगरकी नांई, स्वप्नपुरीकी नांई, वर शापकरके जो उपजता है, तिसकी नांई औषधतें उपजकी नांई इस पदार्थकी सत्यता न आदि होती है; न अनंतर होती है, अरु मध्यमें जो भासता है; सो भी भ्रममात्र है, तैसे यह जगत अकारण है; अरु कार्यकारणभाव संबंधमें भासता है, तो कार्यकारण जगत् भया, अरु आत्मसत्ता अकारण है, जगत साकार है, अरु आत्मा निराकार है.

इस जगतका दृष्टांत जो आत्माविषे देऊंगा तिसका

तुम एक अंश ग्रहण करना; जैसे स्वप्नकी सृष्टि होती है, तिसका पूर्व अपर भाव आत्मतत्त्वविषे मिलता है, काहेतें जो अकारण है; अरु मध्यभावका दृष्टांत नहीं मिलता; काहेतें जो उपमेय अकारण है; तौ तिसका इस समान दृष्टांत कैसे होवे? तातें अपनें बोधके अर्थ दृष्टांतका एक अंश ग्रहण करनां. हे रामजी! जो विचारवान् पुरुष हैं, सो गुरु अरु शास्त्रके श्रवण करके सुखबोधके अर्थ दृष्टांतका एक अंश ग्रहण करते हैं. हे रामजी! तिसकों आत्मतत्त्वकी प्राप्ति होती है; काहेतें जो सारग्राहक होते हैं; अरु जो अपने बोधके अर्थ दृष्टांतका एक अंश ग्रहण नहीं करते, अरु वाद करते हैं, तिनकों आत्मतत्त्वकी प्राप्ति नहीं होती; तातें दृष्टांतका एक अंश ग्रहण करनां, सर्व भावकरके दृष्टांतकों नहीं मिलावनां, अरु पृथककों देखीकरि तर्क नहीं करना; एक अंश दृष्टांतका आत्मबोधके निमित्त सारभूत ग्रहण करनां, जैसे अंधकारमें पदार्थ पड्या होवे, सो दीपकके प्रकाशसों देख लेना, जो दीपककेसाथ प्रयोजन है; औ ऐसे नहीं कहना जो दीपक किसका है, अरु तेल वाती कैसा है, अरु किस स्थानका है; दीपकका प्रकाशहीं अंगीकार करनां, तैसे एक अंश दृष्टांतका आत्मबोधके निमित्त अंगीकार करनां.

हे रामजी! जिसकरि वाक्य अर्थ सिद्ध होवै, सो य-

जो जानने मात्र ज्ञानस्वरूप है, तिसमें स्थित होनेका क्या यत्न है; आत्मा शुद्ध अद्वैतरूपी है; अरु जगत भ्रममात्र है; जो पूर्व अपर विचार कियेतें जिसकी सत्यता न पाइतें तिसकों भ्रममात्र जानियें, अरु पूर्व अपर विचार कियेतें सत्य होवै, तिसका रूप जानियें; सो इस जगतकी सत्यता आदि अंतविषे नहीं है, तातें स्वप्नवत् है, जैसे स्वप्न आदि अंतमें कछु है नहीं, तैसे जाग्रत भी आदि अंतमें नहीं है; तातें जाग्रत स्वप्न दोनों तुल्य हैं.

हे रामजी ! यह वार्त्ता बालक भी जानता है; जो आदि अंतमें जिसकी सत्यता न पाईयें, सो स्वप्नवत् है, जो आदि भी न होवै अरु अंत भी न रहै, तिसकों मध्यमें भी असत्य जानियें; तिसविषे दृष्टांत कहे हैं; संकल्पपुरीवत् ध्यान नगरकी नाई, स्वप्नपुरीकी नांई, वर शापकरके जो उपजता है, तिसकी नांई औषधतें उपजकी नांई इस पदार्थकी सत्यता न आदि होती है; न अनंतर होती है, अरु मध्यमें जो भासता है; सो भी भ्रममात्र है, तैसे यह जगत अकारण है; अरु कार्यकारणभाव संबंधमें भासता है, तौ कार्यकारण जगत् भया, अरु आत्मसत्ता अकारण है, जगत साकार है, अरु आत्मा निराकार है.

इस जगतका दृष्टांत जो आत्माविषे देऊंगा तिसका

ना एक अंश ग्रहण करना; जैसें स्वप्नकी सृष्टि होती है, तिसका पूर्व अपर भाव आत्मतत्त्वविषे मिलता है, काहेतें जो अकारण है; अरु मध्यभावका दृष्टांत नहीं मिलता; काहेतें जो उपमेय अकारण है; तौ तिसका इस समान दृष्टांत कैसे होवै? तातें अपनें बोधके अर्थ दृष्टांतका एक अंश ग्रहण करनां. हे रामजी! जो विचारवान् पुरुष हैं, सो गुरु अरु शास्त्रके श्रवण करके सुखबोधके अर्थ दृष्टांतका एक अंश ग्रहण करते हैं. हे रामजी! तिसकों आत्मतत्त्वकी प्राप्ति होती है; काहेतें जो सारग्राहक होते हैं; अरु जो अपने बोधके अर्थ दृष्टांतका एक अंश ग्रहण नहीं करते, अरु वाद करते हैं, तिनकों आत्मतत्त्वकी प्राप्ति नहीं होती; तातें दृष्टांतका एक अंश ग्रहण करनां, सर्व भावकरके दृष्टांतकों नहीं मिलावनां, अरु पृथककों देखीकरि तर्क नहीं करना; एक अंश दृष्टांतका आत्मबोधके निमित्त सारभूत ग्रहण करनां, जैसे अंधकारमें पदार्थ पड्या होवै, सो दीपकके प्रकाशसों देख लेना, जो दीपककेसाथ प्रयोजन है; औ ऐसे नहीं कहना जो दीपक किसका है, अरु तेल वाती कैसा है, अरु किस स्थानका है; दीपकका प्रकाशहीं अंगीकार करनां, तैसे एक अंश दृष्टांतका आत्मबोधके निमित्त अंगीकार करनां

चन लैना, औ जिसकर वाक्यार्थ सिद्ध न होवै, तिसका त्याग करनां; जो वचन अनुभवकों प्रगट करै, तिसका अंगीकार करनां, जो पुरुष अपनें बोधके निमित्त वचनकों ग्रहण करता है, सोई श्रेष्ठ है; अरु जो वादके निमित्त ग्रहण करता है; सो चोगचुंच है; उह अर्थकों सिद्ध नहीं करता; जो कोउ अभिमानको लेकरि कहता है. सो हस्तिकी नांई शिरपर माटी डारता है, तिसका अर्थ सिद्ध नहीं होता; अरु जो अपने बोधके निमित्त वचनकों ग्रहण करता है, अरु विचारकरि तिसका अभ्यास करता है, तब उह आत्मशांतिकों पावता है. हे रामजी ! आत्मपद पावनें निमित्त अवश्यमेव अभ्यास चहिता है; जब शम, विचार, संतोष, अरु संतसमागमकरि बोधकी प्राप्ति होवै, तब परमपदको पावता है.

हे रामजी ! जिसका दृष्टांत कहता है, सो एकदेश लेकरि कहता है, सर्वसुख कहनेकरि अखंडताका अभाव होय जाता है; अरु जो सर्वसुख दृष्टांत मुख्यकों जानियें. सो सत्यरूप होता है; ऐसे तौ नहीं, आत्मा सत्यरूप है; कार्यकारणतें रहित शुद्ध चैतन्य है; तिसके जनावनेनिमित्त कार्यकारण जगतका दृष्टांत कैसे दीजियें? यह जगतका जो दृष्टांत कहता है; सो एक अंश लेके कहता है; अरु बुद्धिमान भी दृष्टांतके एक अंश कों ग्रहण करते हैं; जो श्रेष्ठ पुरुष हैं, सो अपनें बोधके

निमित्त सारकों ग्रहण करते हैं, अरु जिज्ञासुकों भी
ग्राही चहिता है, जो अपने बोधके निमित्त सारकों ग्र-
हण करे, अरु वाद न करे; जैसे क्षुधार्थीकों चावलपाक
आय प्राप्त होवें; तब भोजन करनेका प्रयोजन है, अरु
उसकी उत्पत्ति अरु स्थितिका वाद करना व्यर्थ है.

हे रामजी! वाक्य सोई है, जो अनुभवकों प्रगट
करे; अरु जो अनुभवकों प्रगट न करे तिसका त्याग
करनां; जो स्त्रीका वाक्य होवे अरु आत्मअनुभवकों
प्रत्यक्ष करे तिसका ग्रहण करनां, अरु परमगुरु वेदवाक्य
होवे औ अनुभवकों प्रगट न करे, तिसका त्याग कर-
नां; जबलग विश्रामकों नहीं पाया, तबलग विचार
कर्त्तव्य है, विश्रामका नाम तुर्यपद है; जब विश्रामकी
प्राप्ति भई तब अक्षय शांति होती है; जैसे मंदराचल
पर्वतके क्षोभतें क्षीरसमुद्र शांत रह्या है, तैसे शांति
होती है. हे रामजी! तुर्यपदसंयुक्त पुरुष है, तिसका
श्रुति स्मृति उक्त कर्महुके करनेकरि प्रयोजन सिद्ध
कछु नहीं होता; अरु न करनेकरि कछु प्रत्यवाय नहीं
होता: सदेह होवे भावे विदेह होवे, गृहस्थ होवे भावे
विरक्त होवे; तिसकों कर्त्तव्य कछु नहीं, उह पुरुष
संसारसमुद्रतें पारंइ हुवा है.

हे रामजी! उपमेयको उपमाकरि जानता है; सो
एक अंशकों ग्रहण करि जानता है, तब बोधकी प्राप्ति

होती है. अरु जो बोधतें रहित है, सो मुक्तिकों प्राप्त नहीं होता, उह व्यर्थ वाद करता है.

हे रामजी ! शुद्ध स्वरूप आत्मसत्ता जिसके घट विषे विराजमान है, तिसकों त्यागकरि अवर विकल्प उठावता है, सो चोगचुंच है, अरु मूर्ख है.

हे रामजी ! जो अर्थ प्रत्यक्ष है, सो प्रमाण मानने योग्य है; अवर जो अनुमान, अर्थापत्ति, आदि प्रमाणसों तिसकी सत्ता प्रत्यक्ष करि होती है. जैसे सब नदीका अधिष्ठान समुद्र है, तैसे सब प्रमाणहुका अधिष्ठान प्रत्यक्षप्रमाण है; सो प्रत्यक्ष क्या है, सो श्रवण करहु

हे रामजी ! चक्षुरूपी ज्ञान संमत संवेदन है, तिस चक्षुकरके विद्यमान होता है, तिसका नाम प्रत्यक्षप्रमाण है; तिन प्रमाणहुकों विषय करनेहारा जीव है; अपने वास्तवस्वरूपके अज्ञानकरि अनात्मारूपी दृश्य बन्या है; तिसविषे अहंकृति करके अभिमान भया है, अभिमान सब दृश्य है, तातें हेयोपादेयबुद्धि भई है, अरु राग दोषकरके पञ्या जलता है; आपकों कर्ता मानीकरि बहिर्मुख हुवा भटकता है.

हे रामजी ! जब विचारकरके संवेदन अंतर्मुखी होवै तब आत्मपद प्रत्यक्ष होता है; अरु निजभावकों प्राप्त होता है, परिच्छिन्न भाव नहीं रहता; शुद्ध शांतिकों प्राप्त नहीं होता; जैसे स्वप्नतें जागेतें स्वप्नका शरीर अरु दृश्य-

भ्रम नष्ट हो जाता है; तैसे आत्माके प्रत्यक्ष हुवेतें सब भ्रम मिट जाता है; अरु शुद्ध आत्मसत्ता भासती है. हे रामजी! यह जो दृश्य अरु द्रष्टा है, सो मिथ्या है; जो द्रष्टा है; सो दृश्य होता है; अरु जो दृश्य है, सो द्रष्टा होता है, सो यह भ्रम मिथ्या आकाशरूप है; जैसे पवनमें स्पंदशक्ति रहती है; तैसे आत्मामें संवेदन रहती है, जब संवेदन स्पंदरूप होती है, तब दृश्यरूप होयके स्थित होती है; जैसे स्वप्नमें अनुभवसत्ता दृश्यरूप होयके स्थित होती है, तैसे यह दृश्य है; तातें सब आत्मसत्ता है; ऐसे विचार करी आत्मपदकों प्राप्त होवहु; अरु जो ऐसे विचारकरके आत्मपदकों प्राप्त न होय सको, तब अहंकार जो उल्लेख फुरता है; तिसका अभाव करो; पाछे जो शेष रहैगा सो शुद्धबोध आत्मसत्ता है, जब शुद्ध बोधकों तुम प्राप्त होहुगे, तब ऐसे चेष्टा पडी होवैगी; जैसे यंत्रीकी पुतली संवेदनविना चेष्टा करती है, तैसे देहरूप पुतलीका पालनहारा मनरूपी संवेदन है, तिसविना पडी रहेगी; परंतु अहंकृतिका अभाव होवेगा, तातें यत्नकरके तिस पद पावनेका अभ्यास करो, जो नित्य शुद्ध शांतरूप है.

हे रामजी! अवर दैव शब्दकों त्याग करी अपना पुरुषार्थ करो, अरु आत्मपदकों प्राप्त होहु; कोउ पुरुषार्थमे सूरमा है सो अत्मपदकों प्राप्त ...

होती है. अरु जो बोधतें रहित है, सो मुक्तिकों प्राप्त नहीं होता, उह व्यर्थ वाद करता है.

हे रामजी! शुद्ध स्वरूप आत्मसत्ता जिसके घटविषे विराजमान है, तिसकों त्यागकरि अवर विकल्प उठावता है, सो चोगचुंच है, अरु मूर्ख है.

हे रामजी! जो अर्थ प्रत्यक्ष है, सो प्रमाण मानने योग्य है; अवर जो अनुमान, अर्थापत्ति, आदि प्रमाणसों तिसकी सत्ता प्रत्यक्ष करि होती है. जैसे सब नदी का अधिष्ठान समुद्र है, तैसे सब प्रमाणहुका अधिष्ठान प्रत्यक्षप्रमाण है; सो प्रत्यक्ष क्या है, सो श्रवण करहु;

हे रामजी! चक्षुरूपी ज्ञान संमत संवेदन है, तिस चक्षुकरके विद्यमान होता है, तिसका नाम प्रत्यक्षप्रमाण है; तिन प्रमाणहुकों विषय करनेहारा जीव है; अपने वास्तवस्वरूपके अज्ञानकरि अनात्मारूपी दृश्य बन्या है; तिसविषे अहंकृति करके अभिमान भया है, अभिमान सब दृश्य है, तातें हेयोपादेयबुद्धि भई है, अरु राग दोषकरके पञ्या जलता है; आपकों कर्त्ता मानीकरि बहिर्मुख हुवा भटकता है.

हे रामजी! जब विचारकरके संवेदन अंतर्मुखी होवे तब आत्मपद प्रत्यक्ष होता है; अरु निजभावकों प्राप्त होता है, परिच्छिन्न भाव नहीं रहता; शुद्ध शांतिकों प्राप्त नहीं होता; जैसे स्वप्नतें जागेतें स्वप्नका शरीर अरु दृश्य-

भ्रम नष्ट हो जाता है; तैसे आत्माके प्रत्यक्ष हुवेतें सब भ्रम मिट जाता है; अरु शुद्ध आत्मसत्ता भासती है. हे रामजी! यह जो दृश्य अरु द्रष्टा है, सो मिथ्या है; जो द्रष्टा है; सो दृश्य होता है; अरु जो दृश्य है, सो द्रष्टा होता है; सो यह भ्रम मिथ्या आकाशरूप है; जैसे पवनमें स्पंदशक्ति रहती है; तैसे आत्मामें संवेदन रहती है, जब संवेदन स्पंदरूप होती है, तब दृश्यरूप होयके स्थित होती है; जैसे स्वप्नमें अनुभवसत्ता दृश्यरूप होयके स्थित होती है, तैसे यह दृश्य है; तातें सब आत्मसत्ता है, ऐसे विचार करी आत्मपदकों प्राप्त होवहु; अरु जो ऐसे विचारकरके आत्मपदकों प्राप्त न होय सकों, तब अहंकार जो उल्लेख फुरता है; तिसका अभाव करों; पाछे जो शेष रहैगा सो शुद्धबोध आत्मसत्ता है, जब शुद्ध बोधकों तुम प्राप्त होहुगे, तब ऐसे चेष्टा पडी होवैगी; जैसे यंत्रीकी पुतली संवेदनविना चेष्टा करती है, तैसे देहरूप पुतलीका पालनहारा मनरूपी संवेदन है, तिसविना पडी रहेगी; परंतु अहंकृतिका अभाव होवेगा; ताते यत्नकरके तिस पद पावनेका अभ्यास करों, जो नित्य शुद्ध शांतरूप है.

हे रामजी! अवर दैव शब्दको त्याग करी अपना पुरुषार्थ करो, अरु आत्मपदकों प्राप्त होहु; कोउ पुरुषार्थमें सूरमा है सो अत्मपदकों प्राप्त होता है; अरु

जो नीच पुरुषार्थका आश्रय करता है, सो संसारसमुद्रमें डुबता है.

इति श्रीयोगवासिष्ठे मुमुक्षुप्रकरणे दृष्टांतप्रकरण नामाष्टादशः सर्गः ॥ १८ ॥

एकोनविंशः सर्गः १९.

अथ आत्मप्राप्तिवर्णनं

वसिष्ठ उवाच—हे रामजी! जब सत्संग करके यह पुरुष शुद्धबुद्धि करै तब आत्मपद पावनेकों समर्थ होवै; प्रथम सत्संग यह है, जिसकी चेष्टा शास्त्रहुके अनुसार होवै, तिसका संग करै! तिसके गुणहुकों हृदयविषे धरै; बहुरि महापुरुषहुके शम, संतोष आदिक गुणहुका आश्रय करै; शमसंतोपादिकरि ज्ञान उपजता है, जैसे मेघहुकरि अन्न उपजता है अरु अन्नकरि जगत होता है; अरु जगतहुतें मेघ होता है; तैसे शम संतोष भी हैं; शमादिक गुण अरु आत्मज्ञान परस्पर होता है; शमादिक गुणकरि ज्ञान उपजता है, अरु आत्मज्ञानकरि शमादिक गुण आय स्थित होते है, जैसे बडे तालकरि मेघ पुष्ट होता है; अरु मेघकर ताल पुष्ट होता है; तैसे शमादिक गुणकरि आत्मज्ञान होता है, अरु आत्मज्ञानतें शमादि गुण पुष्ट होते हैं; ऐसे विचारकरके शमसंतो-

पादिक गुणोंका अभ्यास करहु, तब शीघ्रही आत्मतत्त्वकों प्राप्त होवैगा, हे रामजी! ज्ञानवान् पुरुषकों शमादिक गुण स्वाभाविक आय प्राप्त होते हैं; अरु जिज्ञासुकों अभ्यास करके प्राप्त होते हैं, अरु जैसे धान्यकी पालना स्त्री करती है, उंचे शब्द करती है, जिसकरि पक्षीहुकों उडावती है; जब इस प्रकार पालना करती है, तब फलकों पावती है, तिसतें पुष्ट होती है; तैसे शमसंतोषादिकके पालननेकरि आत्मतत्त्वकी प्राप्ति होती है.

हे रामजी! इस मोक्ष उपाय शास्त्रकों आदितें लेकरि अंतपर्यंत विचारै, तब भ्रांति निवृत्त होवै; धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष, सर्व पुरुपार्थकर सिद्ध होते हैं; परंतु यह मोक्ष उपायका शास्त्र परम कारण है; जो शुद्धबुद्धिमान् पुरुप उसकों विचारैगा, तिसकों शीघ्रही आत्मपदकी प्राप्ति होवैगी; तातें इस मोक्ष उपायशास्त्रका भली प्रकार अभ्यास करो.

इति श्रीयोगवासिष्ठे मुमुक्षुप्रकरणे आत्मप्राप्तिवर्णन नाम एकोनविंशतितमः सर्गः ॥ १९ ॥

समाप्तमिदं योगवासिष्ठे मुमुक्षुप्रकरणं द्वितीयम् ॥ २ ॥